5'1

महाकवि-श्रीकालिदास-विरचितं

कुमारसम्भवं महाकाव्यम्

(द्वितीयसर्गात्मकम्)

•

संजीविनी-अन्वय-शब्दार्थ-संस्कृत-व्याख्या-समास-
व्याकरण-अलंकार-हिन्दी-अनुवाद-
विशेषादिभिरलंकृतम्

•

व्याख्याकर्त्री
डा० (कुमारी) उषा शर्मा एम० ए०, पी-एच्० डी०
साहित्याचार्य, शुक्लयजुर्वेदाचार्य
प्राध्यापिका, (संस्कृत) महिला महाविद्यालय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी

•

प्रकाशक
शिव साहित्य संस्थान
(प्राचीन भारतीय साहित्य एवं संस्कृति के प्रकाशक तथा विक्रेता)
भिखारीदास लेन, वाराणसी–२२१००१

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकाशक

शिव साहित्य संस्थान

सी० के० ५/२६ ए., भिखारीदास लेन

वाराणसी–२२१००१

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण : १९८३

मूल्य : चार रुपये पचास पैसे

मुद्रक

सेवाश्रम प्रिंटिंग प्रेस

जे० १/६३ (शंषमन बाजार), दारानगर

वाराणसी

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रस्तावना

"कुमारस्य सम्भवो नाम भूतिर्महिमा चेति यस्मिन् काव्ये तत्कुमार-सम्भवम्'। प्रधानरूपेण इस काव्य में शिव-पार्वती का विवाह और कुमार-कार्तिकेय का जन्मकथा वर्णित है। अतः यह समष्टि प्रेम का काव्य है शिव और शक्ति के सम्मिलन का यह अपूर्व रंजित काव्य है।[1] शिव कोई सामान्य व्यक्ति नहीं अपितु विश्वमूर्ति हैं और पार्वती निखिल जगत् में व्याप्त परमा शक्ति हैं। शायद इसलिए महाकवि ने इस काव्य के प्रारम्भ में मङ्गलाचरण की आवश्यकता नहीं समझी क्योंकि सम्पूर्ण काव्य ही परमतत्त्व की लीला के लिए समापित है। काव्य के प्रारम्भ में प्रयुक्त केवल 'अस्ति' शब्द ही उस परमसत्ता का संकेतक है, जो जायमान सृष्टि के मूल में है अथवा 'अस्ति' के द्वारा यह इंगित करना चाहा है कि शिव और पार्वती का प्रेम ही एकमेव सत्ता है। वह 'है' प्रत्येक जीव के भीतर, इहलोक से परलोक पर्यन्त, महाशक्ति की यह प्रेम लीला विद्यमान है।

इस काव्य में कालिदास ने स्पष्ट रूप से घोषणा की है कि परमचैतन्य शक्ति ने ही अपने को स्त्री और पुरुष के रूप में द्विधा विभक्त किया है।[2] पुरुष-तत्त्व और स्त्री-तत्त्व का पारस्परिक आकर्षण ब्रह्म (या शिव) की आदि सिसृक्षा का ही विलास है। स्त्री और पुरुष परस्पर आकर्षित होकर उस ब्रह्म की अवस्था को ही प्राप्त करना चाहते हैं, जो सृष्टि के पूर्व केवलात्मा है।[3]

---

१. महर्षि श्री अरविंद के अनुसार शिव और पार्वती का विवाह–पुरुष और प्रकृति के माङ्गलिक मिलन का ही प्रतीक है। आत्मा जिस प्रकार परमात्मा की खोज करती है उसी प्रकार पार्वती शिव को प्राप्त करती हैं।

२. स्त्रीपुंसावात्मभागौ ते भिन्नमूर्तेः सिसृक्षया।
प्रसूतिभाजः सर्गस्य तावेव पितरौ स्मृतौ॥ २।७

३. नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं प्राक्सृष्टेः केवलात्मने।
गुणत्रयविभागाय पश्चाद् भेदमुपेयुषे॥ २।४

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शिव और पार्वती के माध्यम से स्त्री और पुरुष के विशुद्ध प्रेम का प्रतिपादन ही कवि का लक्ष्य प्रतीत होता है। विशुद्ध प्रेम में जो अद्वैत भावना आती है, वह शिवत्व (चित्-शक्ति) की अनुभूति का ही एक रूप है। इसी महान् उद्देश्य को दृष्टि में रखकर महाकवि ने शिव और पार्वती को पुरुष-तत्त्व और स्त्री-तत्त्व का प्रतीक बनाया और यह दिखाने की चेष्टा की है कि तप की अग्नि से निखरा हुआ पवित्र और सच्चा प्रेम ही शिवत्व की उपलब्धि है।

काव्य का प्रारम्भ हिमालय वर्णन से होता है। कालिदास की दृष्टि में हिमालय प्रस्तर खण्डों और हिमशिलाओं से युक्त पाषाण मात्र नहीं है। वह देवतात्मा है। उसका देवत्व देवलोक तक ही सीमित नहीं है अपितु मनुष्य लोक तक उसकी कीर्तिगाथा फैली हुई है। वह समस्त रत्नों का उद्गम स्थान है। पार्वती इसी महान् हिमालय की पुत्री हैं।

हिमालय के एक छोर पर कैलास पर्वत है, जहाँ शिव समाधिस्थ बैठे हैं। उधर देवगण तारक नामक महादैत्य के अत्याचारों से संत्रस्त हैं। आसुरी शक्ति के समक्ष दैवी शक्ति ने घुटने टेक दिये हैं और जगत् विनाश की ओर अग्रसर हो रहा है तभी देवगण ब्रह्मा के पास जाते हैं और उस महादैत्य के शमन का उपाय पूछते हैं, ब्रह्मा उन्हें यह बतलाते हैं कि शिव और पार्वती के समागम से उत्पन्न पुत्र में ही तारक के विनाश की सामर्थ्य है। शिव तमोगुणातीत परम-ज्योति स्वरूप हैं और शिव के महान् तेज को ग्रहण करने का सामर्थ्य परम शक्ति स्वरूपा पार्वती में ही है। अत: आपलोग शिव के चित्त को पार्वती की ओर आकृष्ट करने का प्रयास करें। यहीं कालिदास ने अपने महाकाव्य का उद्देश्य स्पष्ट कर दिया है। तमोगुणी आसुरी शक्ति के विनाश की क्षमता तम: परे व्यवस्थित देवता के तेज में ही है और इस महान् तेज को धारण करने की सामर्थ्य तम: परे व्यवस्थिता कन्या ही रख सकती है। पार्वती वही कन्या है।

अब समाधिरत शिव के चित्त को पार्वती की ओर आकृष्ट करने का कार्य अत्यन्त दुरूह था। देवताओं ने इस कार्य के लिए प्रेम के देवता काम का स्मरण किया। कामदेव अपनी साज-सज्जा के साथ उपस्थित हुआ। प्रेम के इस देवता ने असमय में ही उस स्थान पर जहाँ शिव समाधिस्थ थे और

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पार्वती उनकी अर्चना में संलग्न थीं, वसन्त का आयोजन करा दिया। क्षण भर के लिए शिव के चित्त में किंचित् विक्षोभ हुआ। पूजन के लिए आयी हुई पार्वती के बिम्बाधर पर उनकी टकटकी लग जाती है।

शिव ने चित्त के विक्षोभ का कारण जानने के लिए दिग्पर्यन्त दृष्टि दौड़ायी तो बाण सन्धान करने वाले प्रेम के देवता पर उनकी दृष्टि पड़ी। उनका ज्ञान-नेत्र जाग्रत् हुआ और काम का अन्त हुआ। इस प्रकार काम पर धर्म की विजय हुई। यही मदन-दहन का रहस्य है।

चौथे सर्ग में काम की पत्नी रति का करुण विलाप वर्णित है।

कुमारसम्भव का पंचमसर्ग सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। अपने सामने ही शारीरिक आकर्षण के देवता काम को भस्मीभूत होते देखकर पार्वती ने बाह्य स्वरूप को तपस्या के द्वारा सफल बनाने का निर्णय किया। अब पार्वती घोर तपस्या में संलग्न हो गई और तप के परिणाम स्वरूप अपने अभीष्ट को प्राप्त करने में सफल हुईं। कालिदास ने पार्वती की इस तपस्या का रहस्य विशेष रूप से स्पष्ट किया है—

'इयेष सा कर्तुमवन्ध्यरूपतां समाधिमास्थाय तपोभिरात्मनः।
अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वयं तथाविधं प्रेम पतिश्च तादृशः॥'

यहाँ 'तथाविधं' और 'तादृशः' शब्दों के द्वारा गम्भीर ध्वनि अभिव्यंजित है। पार्वती की कठोर तपस्या का ही फल था 'तथाविधं प्रेम' उस प्रकार का उच्चकोटि का दिव्य प्रेम और 'तादृशः पतिः' उसी प्रकार का मृत्युञ्जय पति। तप के परिणाम स्वरूप ही पार्वती अन्य कन्याओं के लिए दुर्लभ मृत्युञ्जय पति को वरण करने में समर्थ हो सकीं। परम शिव और परमा प्रकृति का यह अपूर्व मिलन अलौकिक प्रेम और तपस्या के सामञ्जस्य की चरम परिणति है।

साथ ही अर्धनारीश्वर शिव पार्वती के बिना आधे अधूरे हैं। स्वयं को पार्वती की तपस्या से क्रीतदास बनाकर, उन्होंने उन्हें वह गौरव प्रदान किया, जो अन्य नारियों के लिए दुर्लभ है। पार्वती की महान् साधना का ही यह फल था। गौरी-पूजन का यही रहस्य है, जो इस महान् साधना में अन्तर्हित है।

छठें एवं सातवें सर्ग में विवाह की तैयारी और विवाह का प्रसङ्ग वर्णित है। आठवें सर्ग में शिव-पार्वती की विलास-लीला का वर्णन है, किंतु विद्वज्जन

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आठवाँ सर्ग कालिदास विरचित नहीं मानते। क्योंकि मल्लिनाथ ने उस पर अपनी टीका नहीं लिखी। किन्तु इस सर्ग के अभाव में 'विशुद्ध प्रेम के अद्वैत की भावना' अथवा 'शिवत्व की अनुभूति रूप' कालिदास का मूल उद्देश्य सिद्ध नहीं हो सकता तथा व्यथित मानव-चित्त में उत्पन्न होने वाली प्रेम-तरङ्गों को विश्वव्यापी प्रेम-लीला का ही विस्फुरण बताने का उनका संकल्प अधूरा रह जाता।

यद्यपि इसके बाद भी ग्रन्थ में नौ सर्ग और मिलते हैं, किंतु वे निःसंदेह प्रक्षिप्त हैं।

कुमारसम्भव का महाकाव्यत्व

कुमारसम्भव कालिदासीय कला का रमणीय निदर्शन है। यह एक उत्कृष्ट महाकाव्य है। अलौकिक गुण सम्पन्न त्रैलोक्य पिता शिव नायक हैं। महान् कार्य की सिद्धि के लिए देवताओं को दौत्य और ऋषियों की मन्त्रणा आयोजित है। इस महाकाव्य में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप चतुर्वर्ग की साधना का अनुपम स्रोत प्रवाहित हो रहा है। शिवतत्त्व के मोक्षपरक होने के कारण मोक्ष-प्राप्ति ही चरम उद्देश्य है। भामह के काव्य-लक्षण के अनुसार महाकाव्य में लोकस्वभाव का अनुसरण होना चाहिए, अतः दिव्य नायक में भी मानवोचित व्यवहार की उद्भावना की गई है। महाकाव्य में वर्णन की प्रचुरता अपेक्षित है, किन्तु कालिदासीय वर्णन प्रासङ्गिक हैं तथा अतिविस्तृत न होने पर भी सौन्दर्य के वाहक हैं।

सौन्दर्य-भावना—कालिदास सौन्दर्य के पुजारी हैं। रूप-सौन्दर्य का सर्वातिशायी विकास नायक-नायिकाओं में युवावस्था में तथा प्राकृतिक विभूतियों में वसन्त ऋतु में होता है। कालिदास इस शाश्वत मान्यता का अनुसरण करते हुए प्रतीत होते हैं—

'भवन्ति साम्येऽपि निविष्टचेतसां
वपुर्विशेष्वतिगौरवाः क्रियाः।'

कवि की दृष्टि में सुन्दर रूप, विद्युत् की भाँति स्फुरित होकर दर्शकों के चित्त को शीघ्रता से वशीभूत कर लेता है। प्रकृति में जो कुछ भी चारुतर है, उसी से वपु विशेष को अलंकृत करने में वे निष्णात हैं। सुन्दर वस्तुओं के परस्पर संयोग से सौन्दर्य द्विगुणित होता है—

'सा सम्भवद्भिः कुसुमैर्लतेव ज्योतिर्भिरुद्यद्भिरिव त्रियामा।
सरिद्विहङ्गैरिव लीयमानैरामुच्यमानाभरणा चकासे॥' ७।२१

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सौन्दर्य की सार्थकता फलसंयोग से व्यक्त होती है—

'प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता ।' ५ । १

नायिका प्रधान काव्य—प्रायः काव्यों में नायक ही नायिका की प्राप्ति में प्रयत्नशील होता है, किंतु कुमारसम्भव के नायक शिव विरक्त हैं और नायिका पार्वती ही शिव की प्राप्ति में सतत प्रयत्नशील हैं। अतः यह नायिका प्रधान काव्य है।

आख्यान कला—आख्यान में चमत्कारपूर्ण ढंग से आकस्मिक मोड़ लाना कालिदास की कला का वैशिष्ट्य है। पंचम सर्ग में तपस्यानिरत पार्वती की परीक्षा लेने के लिए शिव ब्रह्मचारी के वेश में उपस्थित होकर शिव की निन्दा करने लगे। उन्होंने पार्वती से तपस्या रूपी वृथा श्रम से विरत होने को कहा। फलतः पार्वती अत्यन्त उद्विग्न हो गईं और वहाँ से उठकर जाने को उद्यत हुईं—'इतो गमिष्याम्यथवेति वादिनी' तभी शिव ने ब्रह्मचारी वेष को त्याग कर उनका हाथ पकड़ लिया और तब 'शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ'—पार्वती न जा सकीं और न रुक सकीं।

कालिदास की कथा में भावी घटना की प्रायः सूचना रहती है। पार्वती और शिव के विवाह का संकेत प्रथम सर्ग में ही मिल जाता है—

'तां नारदः कामचरः कदाचित् कन्यां किल प्रेक्ष्य पितुः समीपे ।
समादिदेशैकवधूं भवित्रीं प्रेम्णा शरीरार्धहरां हरस्य ॥' १।५०

उदात्तता—कुमारसम्भव की उदात्तता प्रारम्भ में ही अलौकिक भूमिका के द्वारा व्यक्त है। प्रथम श्लोक में ही अद्वितीय महिमा से मण्डित हिमालय के स्वरूप का वर्णन है। पार्वती के सौन्दर्य वर्णन में भी कवि ने अलौकिकता को उद्भावना की है—

'सर्वोपमाद्रव्यसम्मुच्चयेन यथाप्रदेशं विनिवेशितेन ।
सा निर्मिता विश्वसृजा प्रयत्नादेकस्थसौन्दर्यादिदृक्षयेव ॥'

तृतीय सर्ग में समाधिस्थ शिव को विमोहित करने के लिए कामदेव-सृष्ट सारा आयोजन अत्यन्त उत्कृष्ट है। पंचम सर्ग में वर्णित वटुवेशधारी शिव और पार्वती का अद्वितीय संवाद विश्व-साहित्य में अन्यत्र कहीं ढूंढ़े न मिलेगा।

शैली—जीवन दर्शन के गूढ़ रहस्यों को सरस एवं मनोरम शैली में उपस्थित करना कालिदासीय कविता की विशेषता है। कुमारसम्भव के

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पञ्चम सर्ग में शिव के विषय में जीवन के साथ माङ्गलिक प्रवृत्तियों का सम्मिलित वर्णन दर्शनीय है—

'वपुर्विरूपाक्षमलक्ष्यजन्मता दिगम्बरत्वेन निवेदितं वसु ।
वरेषु यद् बालमृगाक्षि मृग्यते तदस्ति किं व्यस्तमपि त्रिलोचने ॥ ५ । ७२
अकिञ्चनः सन् प्रभवः स सम्पदां त्रिलोकनाथः पितृसद्मगोचरः ।
स भीमरूपः शिव इत्युदीर्यते न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः ॥' ५ । ७७

कालिदास के काव्यों में संवादों का वैशिष्ट्य परिलक्षित होता है । प्रायः प्रत्येक सर्ग में संवाद आयोजित है, जिससे काव्य में भी नाट्यगत आनन्द की अनुभूति होती है । कुमारसम्भव में हर ओर अभिनय योग्य मनोरम सामग्री बिखरी पड़ी है—

'इतो गमिष्याम्यथवेति वादिनी चचाल बाला स्तनभिन्नवल्कला ।
स्वरूपमास्थाय च तां कृतस्मितः समाललम्बे वृषराजकेतनः ॥' ५ । ८४

अलङ्कार—कालिदासीय उपमा का तो कहना ही क्या है । उपमा-जगत् के तो वे एकछत्र सम्राट् ठहरे । स्तनभार से किंचित् अवनत, लाल वस्त्रों में बहुरङ्गी वनपुष्पों से अपने को सजाकर शिव के समीप जाती हुई पार्वती को कालिदास ने गमनशील पल्लविनी लता मानकर दीपशिखा के समतुल्य एक नयी इमेज प्रस्तुत की है—

'आवर्जिता किञ्चिदिव स्तनाभ्यां वासो वसाना तरुणीकरागम् ।
पर्याप्तपुष्पस्तबकावनम्रा संचारिणी पल्लविनी लतेव ॥' ३ । ५४

यद्यपि उपमाकालिदासस्य के रूप में कवि की विशेष प्रशस्ति है तथापि अन्य अलङ्कारों—अर्थान्तरन्यास, व्यतिरेक आदि के प्रयोग में भी महाकवि बेजोड़ हैं—

'अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य हिमं न सौभाग्यविलोपि जातम् ।
एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः ॥' १।३

गुणों के समूह में एक दोष चन्द्रमा की किरणों में कलङ्क की तरह विलीन हो जाता है । हिमालय अत्यन्त दुर्लभ असंख्य मणियों का या रत्नों की उद्गम भूमि है और इस प्रकार हिम का आश्रय स्थान होने पर भी उसकी महिमा खण्डित नहीं होती । गणनातीत सद्-गुणों के सामने एकाध दोष का पता ही कहाँ चलता है । चन्द्रमा के स्निग्ध किरण-जाल में लुप्त चन्द्रकलङ्क पर

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किसका ध्यान जाता है? इस प्रकार आत्मानुभूति के सार तत्त्व से युक्त अर्थान्तर-न्यास की उक्तियाँ कालिदास की विश्वव्यापिनी प्रतिभा की परिचायक हैं।

व्यतिरेक का उदाहरण—

'चन्द्रं गता पद्मगुणान्न भुङ्क्ते पद्माश्रिता चान्द्रमसीमभिख्याम्।
उमामुखं तु प्रतिपद्य लोला द्विसंश्रयां प्रीतिमवाप लक्ष्मीः ॥' १।४३

पार्वती के मुखमण्डल के आविर्भाव के पूर्व सौन्दर्य अपने को ठीक से प्रकट करने में असमर्थ था। जब वह चन्द्रमा की आह्लादकता में अपने को अभिव्यक्त करता था तो उसके पद्मविशिष्ट गुणों का उन्मोचन न हो पाता था और जब वह कमल का आश्रय लेता था तो अपने चन्द्रनिष्ठ गुणों को खो बैठता था, किन्तु पार्वती के मुखमण्डल का आश्रय पाकर, चन्द्र एवं पद्म दोनों के विशिष्ट गुणों से समन्वित होकर सौन्दर्य अपने को अशेष रूप से अभि-व्यक्त करने में सफल हुआ। इस प्रकार पार्वती के मुख-सौन्दर्य को उपमान-भूत चन्द्र एवं पद्म से उत्कृष्ट बतलाकर व्यतिरेक के माध्यम से अलौकिक सौन्दर्य की व्यञ्जना की है।

कुमारसम्भव में दृष्टान्त, उत्प्रेक्षा, रूपक, स्वभावोक्ति आदि अलंकारों का भी सुन्दर समायोजन हुआ है।

अनुप्रास योजना में प्रायः सर्वत्र ही सद्यः चित्त को चमत्कृत करने वाली संगीत ध्वनि विद्यमान है—

'स मानसीं मेरुसखः पितॄणां कन्यां कुलस्य स्थितये स्थितिज्ञः।
मेनां मुनीनामपि माननीयामात्मानुरूपां विधिनोपयेमे ॥' १।१८

रस—कालिदास के काव्यों में शृङ्गार और करुण रस का सुन्दर विधि से निर्वाह हुआ है। रसराज शृङ्गार के तो वे आचार्य ही हैं।[1] कुमारसम्भव शृङ्गार रस प्रधान काव्य है। द्वितीय सर्ग में ही महाकवि ने शृङ्गारिक भूमिका उपस्थित की है—

---

१. कालिदास की शृङ्गार-प्रियता को ही देखकर कवि जयदेव ने उन्हें कविता कामिनी का विलास कहा है।

'स्वदधीनं खलु देहिनां सुखम्।' ४।१०
'क्रमपरमवशं न विप्रकुर्युर्विभुमपि तं यदमी स्पृशन्ति भावाः।' ६।९५

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'अथ स ललितयोषिद् भ्रूलताचारुशृङ्गं
रतिवलयपदाङ्के चापमासज्य कण्ठे।
सहचरमधुहस्त-न्यस्त-चूताङ्कुरास्त्रः
शतमखमुपतस्थे प्राञ्जलिः पुष्पधन्वा ॥' २।६४

देहधारियों के समस्त सुख काम के अधीन मानने वाले कालिदास शृङ्गार के अधिपति देवता काम के प्रशंसक हैं—

काव्यमीमांसाकार राजशेखर भी कालिदास के शृङ्गारात्मक ललितोद्गार के प्रशंसक हैं—

'एको न जीयते हन्त कालिदासो न केनचित्।
शृङ्गारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयी किमु ॥'

यह काम जब शिव तक को अपना लक्ष्य बनाने में नहीं चूकता तो सामान्य जनों का तो कहना ही क्या? तृतीय सर्ग में पार्वती जब अपने दुरन्त रूप-सम्भार के साथ शिव के सम्मुख आकर खड़ी होती हैं तो शिव की मनोदशा पूर्णिमा के चन्द्र-विम्ब से त्रस्त तरंगाकुल समुद्र की-सी हो जाती है; धैर्य छूटने लगता है और उमा के विम्बाधर पर टकटकी लग जाती है —

'हरस्तु किञ्चित् परिलुप्तधैर्यश्चन्द्रोदयारम्भ इवाम्बुराशिः।
उमामुखे विम्वफलाधरोष्ठे व्यापारयामास विलोचनानि ॥' ३। ६७

इस श्लोक में शिव के चित्त में एकाएक उत्पन्न होने वाले रतिभाव का सुन्दर चित्रण हुआ है।

पद-योजना—कालिदास की प्रशस्ति का प्रमुख कारण है उनकी लालित्य-योजना। उनकी समस्त रचनायें वैदर्भी रीति और प्रसादगुण से मण्डित हैं। दण्डी के अनुसार कालिदास वैदर्भी के प्रतिष्ठापक हैं।[1] वैदर्भी रीति की विशेषता माधुर्य व्यञ्जक कोमल वर्णों का विन्यास और दीर्घ समासों का अभाव है। अतः ललितपदयोजना पर महाकवि का विशेष आग्रह था। यही कारण है कि उनकी रचना सर्वत्र सरलता, सुवोधता और श्रुतिमधुरता का साम्राज्य है। कुमारसम्भव में श्रुतिमधुर स्वरलहरी का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

---

१. 'लिप्ताः मधुद्रवेणासन् यस्य निर्विषया गिरः।
तेनेदं वर्त्म वैदर्भं कालिदासेन शोधितम् ॥'

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'द्वयं गतं सम्प्रति शोचनीयतां समागमप्रार्थनया पिनाकिनः।
कला च सा कान्तिमयी कलावतस्त्वमस्य लोकस्य च नेत्रकौमुदी ॥' ५।७१

छन्द--छन्दों के प्रयोग में कालिदास कहीं-कहीं भावानुकरण करते हुए प्रतीत होते हैं। कुमारसम्भव में रतिविलाप के प्रसंग में वैतालीय छन्द का प्रयोग किया है तो वसन्त की सुषमा को चित्रित करने के लिए द्रुतविलम्बित छन्द का आश्रय लिया है। इसके अतिरिक्त उपजाति, मालिनी, वसन्ततिलका, अनुष्टुप् आदि छन्दों का भी सुन्दर प्रयोग हुआ है।

व्यञ्जना—कालिदास व्यञ्जनावादी कवि हैं। किसी भाव को स्पष्ट शब्दों में व्यक्त करने की अपेक्षा व्यञ्जनावृत्ति का आश्रय लेते हुए स्वल्प शब्दों में सूक्ष्म संकेत मात्र दे देने में कवि को नैपुण्य हासिल है--

'एवं वादिनि देवर्षौ पार्श्वे पितुरधोमुखी।
लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती ॥' ६।८४

देवर्षि जब हिमालय के पास पार्वती के साथ परिणय के लिए शिव की प्रार्थना को लेकर जाते हैं तो पिता के समीप बैठी हुई पार्वती ने लज्जावश मुँह नीचा कर लिया और लीला-कमल की पँखुड़ियाँ गिनने लगती हैं। इस प्रकार यहाँ शब्दव्यापार के विना ही, कमल की पँखुड़ियों की गणना के वर्णन से पार्वती की लज्जा, प्रेम और आनन्द छिपाने की भावना अभिव्यञ्जित है। इसी तरह प्रथम सर्ग में शाब्दी व्यञ्जना का एक प्रसिद्ध श्लोक--

'तां नारदः कामचरः कदाचित् कन्यां किल प्रेक्ष्य पितुः समीपे।
समादिदेशैकवधूं भवित्रीं प्रेम्णा शरीरार्धहरां हरस्य ॥' १।५०

यहाँ 'शरीरार्धहरां हरस्य' के द्वारा पार्वती सर्वहर शिव की भी अर्धहरा हैं—यह ध्वनि व्यञ्जित हो रही है।

दिव्य सन्देश--शिव और शक्ति के लिए समर्पित इस महाकाव्य के माध्यम से कालिदास ने जगत् को अनूठी शिक्षा दी है—'तपस्या और प्रेम का सामञ्जस्य'। तप और प्रेम के मञ्जुल संयोग में ही जीवन की सार्थकता है। पार्वती का जीवन तप और प्रेम के सामञ्जस्य के रूप में चित्रित है; तो शिव का भोग और वैराग्य के सामञ्जस्य का प्रतीक है। मात्र वैराग्य से आसुरी शक्ति का शमन असम्भव है। अतः कालिदास समन्वित भोग के पक्षपाती

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हैं।[1] दूसरी ओर पार्वती की उग्र तपस्या द्वारा महाकवि ने सतत कामरत रहने की सलाह दी है। कवि की दृष्टि में तपस्या कभी निष्फल नहीं होती। तपस्या के परिणाम स्वरूप ही पार्वती अपने मनोरथ को प्राप्त करने में सफल हो सकीं।

ब्रह्म का स्वरूप

कालिदास केवल अलौकिक काव्य-प्रतिभा के ही धनी नहीं हैं अपितु भारतीय संस्कृति के प्राणभूत तत्त्व 'अध्यात्म' के परम साधक भी हैं। वे मात्र शिव के ही उपासक नहीं अपितु चराचर जगत् के मूल में विद्यमान उस अद्वैत सत्ता के भी उपासक हैं, जो कार्यभेद से सृजन कर्त्ता के रूप में ब्रह्मा, पालन कर्त्ता के रूप में विष्णु और संहार कर्त्ता के रूप में शिव हैं—

'तिसृभिस्त्वमवस्थाभिर्महिमानमुदीरयन् ।
प्रलयस्थितिसर्गाणामेकः कारणतां गतः ॥' २ । ६

उनकी रचनाओं में विद्यमान शिव की अनेकशः स्तुतियों के आधार पर उन्हें मात्र शैव मानना नितान्त अनुचित है। वस्तुतः शिव के रूप में उन्होंने उस परमतत्त्व का ही वर्णन किया है, जो इस दृश्यमान जगत् के मूल में है। कुमारसम्भव के द्वितीय सर्ग में ब्रह्मा[2] की, रघुवंश के दशम सर्ग में विष्णु[3] की स्तुति तथा कुमारसम्भव के छठे सर्ग में शिवपरक स्तुतियाँ एक ही मौलिक तथ्य को उदघाटित करती हैं कि कालिदास अद्वैत भाव के साधक हैं। वह जितने शैव हैं उतने ही वैष्णव भी हैं।

अतः कहना न होगा कि कालिदास इस विश्व-व्यवस्था के मूल में एक सर्वव्यापी सत्ता को स्वीकार करते हैं, जिसे वे कभी शिव के रूप में चित्रित करते हैं, कभी ब्रह्मा के रूप में और कभी विष्णु के रूप में। यह विश्वव्यापी व्यवस्था समष्टिगत चित् शक्ति की सिसृक्षा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

---

१. त्यागाश्रित भोग ही भारतीय संस्कृति का दिव्य सन्देश है—'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा'—कालिदास इसी उपनिषद् वाक्य के उद्घोषक कवि हैं।

२. 'नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं प्राक्सृष्टेः केवलात्मने ।
गुणत्रयविभागाय पश्चाद् भेदमुपेयुषे ॥' २ । ४

३. 'नमो विश्वसृजे पूर्वं विश्वं तदनु बिभ्रते ।
अथ विश्वस्य संहर्त्रे तुभ्यं त्रेधास्थितात्मने ॥' रघु० १०।१६

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सृष्टि के आदि में एकरूप में विद्यमान उस परब्रह्म ने ही सत्त्व, रजस् और तमस्–इन तीनों गुणों के विभाजन के लिए, ब्रह्मा, विष्णु और शिव अर्थात् जन्म, स्थिति और संहार की कारण भूत उपाधि को ग्रहण किया है—

'नमस्त्रिमूर्तये प्राक् सृष्टेः केवलात्मने ।
गुणत्रयविभागाय पश्चाद् भेदमुपेयुषे ॥' २।४

केवलात्मा ब्रह्म ही भेदावस्था को प्राप्त होकर इस विश्व–ब्रह्माण्ड में स्त्री और पुरुष इन दो रूपों में विभक्त है—

'स्त्रीपुंसावात्मभागौ ते भिन्नमूर्तेः सिसृक्षया ।
प्रसूतिभाजः सर्गस्य तावेव पितरौ स्मृतौ ॥' २।७

द्विधा विभक्त उस ब्रह्मा के जो स्वप्न और जागरण हैं, वही प्राणियों के प्रलय और सृष्टि हैं। वह ब्रह्म ही इस जायमान सृष्टि का कारण है, किन्तु उसका कोई कारण नहीं है, वह सृष्टि का नियामक है किन्तु उसका कोई नियामक नहीं है। सृष्टि के आदि में विद्यमान होने पर भी वह स्वयं अनादि हैं—

'जगद्योनिरयोनिस्त्वं जगदन्तो निरन्तकः ।
जगदादिरनादिस्त्वं जगदीशो निरीश्वरः ॥' २।९

जगद्योनित्व के साथ अयोनित्व का, जगदन्तत्व के साथ निरन्तकत्व का, जगदादित्व के साथ अनादित्व का तथा जगदीशत्व के साथ निरीशत्व का यह विरुद्ध धर्माश्रयत्व ही प्रत्यभिज्ञा दर्शन है, भगवत्ता की परम पहचान है।

उस परमतत्त्व की अपनी स्वतन्त्र सत्ता है। सृष्टि तथा प्रलय के लिए उसे किसी साधन की अपेक्षा नहीं रहती है। वह स्वय ही स्वयं का ज्ञाता है, स्वयं ही स्वयं को सृष्ट करता है, कृतकृत्य होने पर अपने स्वरूप को अपने में ही लीन कर लेता है—

'आत्मानमात्मना वेत्सि सृजस्यात्मानमात्मना ।
आत्मना कृतिना च त्वमात्मन्येव प्रलीयसे ॥' २।१०

वह जितना ही द्रव है उतना ही घन है, जितना ही स्थूल है उतना ही सूक्ष्म है, जितना ही लघु है उतना ही गुरु है। कार्य रूप में व्यक्त है तथा कारण रूप में अव्यक्त है। अणिमा आदि अष्टसिद्धियों में प्राकाम्य नामक सिद्धि है। जिस वाणी का प्रारम्भ ओंकार से होता है, जिसका कर्म यज्ञ है और जिसका फल स्वर्ग है, उस दिव्य वाणी का उद्गम स्थल है।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वह ब्रह्म ही मोक्षरूप पुरुषार्थ में प्रवृत्त करने वाली मूल प्रकृति है और वही उस प्रकृति का साक्षात्कार करने वाला तटस्थ पुरुष है—

'त्वामामनन्ति प्रकृतिं पुरुषार्थ-प्रवर्तिनीम् ।
तद्दर्शिनमुदासीनं त्वामेव पुरुषं विदुः ॥' २।१३

इस प्रकार कालिदास ने यहाँ सांख्य परक ब्रह्म की स्तुति की है। ब्रह्म को सांख्य प्रोक्त चौबीस तत्त्वों के मूल में रहने वाली मूल प्रकृति कहा गया है। सांख्य दर्शन के अनुसार पुरुष और प्रकृति दो परस्पर स्वातन्त्र न होकर एक ही परमेश्वर के दो रूप हैं। पुरुष को निष्क्रिय या तटस्थ कहा गया है और प्रकृति ही सम्पूर्ण जगत् की कारयित्री है।

कालिदास अद्वैत तत्त्व के अनन्य उपासक हैं, तभी तो उस परमसत्ता के लिए हव्य तथा होता, भोज्य तथा भोक्ता, वेद्य और वेदिता, ध्येय तथा ध्याता शब्दों का एक साथ प्रयोग करने से भी वे कभी नहीं चूकते—

'त्वमेव हव्यं होता च भोज्यं भोक्ता च शाश्वतः ।
वेद्यं च वेदिता चासि ध्याता ध्येयं च यत्परम् ॥' २।१५

इस प्रकार द्वैत में भी अद्वैत की कल्पना से कालिदास अद्वैत तत्त्व के परम साधक हैं।

कालिदास की कविता की विशेषता, कालिदास का समय तथा 'उपमा कालिदासस्य' और कुमारसम्भव के सारांश के लिए मेरे द्वारा लिखित प्रथम सर्ग की भूमिका का अवलोकन करें।

अपने श्रेष्ठ गुरुजनों एवं सहयोगियों के प्रति आशीर्वाद तथा सहयोग के लिए लेखिका आभारी है। शिव साहित्य संस्थान, वाराणसी ने जिस उत्साह एवं तत्परता से विशुद्ध छपाई-सफाई पूर्वक प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन किया है, उसके लिए मैं विशेष रूप से आभारी हूँ।

अन्त में, मैं यह कहना चाहूँगी कि **आचार्य पण्डित शिवदत्त मिश्र शास्त्री जी** का सर्वाङ्गीण सहयोग यदि न प्राप्त हुआ होता तो यह कृति पाठकों के सम्मुख न आ पाती।

वाराणसी
फाल्गुनी पूर्णिमा, १९८३

—उषा शर्मा

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

द्वितीय सर्ग का सारांश

कुमारसम्भव के द्वितीय सर्ग में ब्रह्मा की स्तुति तारक नामक महादैत्य के अत्याचार की कथा वर्णित है। जिस समय पार्वती समाधिस्थ शिव की अर्चना में संलग्न थीं, उसी समय तारक नामक महादैत्य के अत्याचारों से संत्रस्त देवगण इन्द्र के नेतृत्व में उसके शमन का उपाय पूछने के लिए ब्रह्म-लोक गये। तारकासुर से अपमानित होने के कारण क्षीण मुखकान्ति वाले देवताओं के समक्ष ब्रह्मा उसी प्रकार आविर्भूत हुए जिस प्रकार मुकुलित पद्मों वाले सरोवर के सम्मुख प्रातःकालीन सूर्य प्रकट होता है। ब्रह्मा के प्राकट्य के अनन्तर देवताओं ने सारगर्भित वाणी से उनकी स्तुति की——

सृष्टि से पूर्व एकरूप में विद्यमान, तत्पश्चात् सत्त्व, रज और तम-इन तीन गुणों के विभागार्थ, ब्रह्मा, विष्णु और शिव की उपाधि को धारण करने वाले आपको नमस्कार है -

'नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं प्राक्सृष्टे. केवलात्मने।
गुणत्रयविभागाय पश्चाद् भेदमुपेयुषे ॥' २।४

हे अजन्मा ! आपने ही जगत् को सृष्ट करने की इच्छा से जल में अमोघ बीज का वपन किया है, जिससे यह चराचर जगत् सृष्ट हुआ है। आप ही संसार के हेतु हैं, किंतु आपका कोई हेतु नहीं है. आप ही इस जगत् के विनाशक किंतु आपका कोई विनाशक नहीं है। सृष्टि के आदि में विद्यमान होते हुए भी अनादि हैं। आप स्वयमेव स्वयं के ज्ञाता हैं, स्वयं ही स्वयं को सृष्ट करने वाले हैं। कृतकृत्य होकर अपने स्वरूप को स्वयं में ही लीन कर लेते हैं। द्रव, घन, स्थूल, सूक्ष्म, लघु तथा गुरु हैं। कार्यरूप में व्यक्त तथा कारण रूप में अव्यक्त हैं। अष्टसिद्धियों में प्राकाम्य नामक सिद्धि हैं।

हे ब्रह्मन् ! आप ही भोग और मोक्षरूप पुरुषार्थ में प्रवृत्त करने वाली मूल प्रकृति हैं और आप ही उस प्रकृति का साक्षात्कार करने वाले तटस्थ पुरुष भी हैं। आप सृष्टि कर्ताओं (प्रजापतियों) के भी स्रष्टा हैं, आप ही ज्ञेय तथा ज्ञाता हैं, आप ही ध्येय तथा ध्याता हैं।

इस प्रकार देवताओं की सारगर्भित स्तुतियाँ सुनकर ब्रह्मा अत्यधिक प्रसन्न हुए तथा वर प्रदान की इच्छा से देवताओं के आगमन तथा मुखमालिन्य का कारण पूछा। तब देवगुरु बृहस्पति ने तारकासुर के औद्धत्य का वर्णन

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किया । यद्यपि देवगण उसकी इच्छानुकूल सेवा में सलग्न हैं तब भी देवाङ्गनाओं को उसने अपने यहाँ बन्दी बनाया है और उनसे भी सेवाकार्य कराता है । इतना ही नहीं, अपने अत्याचारों से वह समस्त लोकोंको पीड़ित कर रहा है । उसने नन्दन वन को विजड़ित कर दिया है । आकाश गङ्गा से स्वर्ण-कमलों को उखाड़ कर अपने सरोवरों में लगा दिया है । इन्द्र के वाहन उच्चैःश्रवा को भी छीन लिया है । केवल वही नहीं उसके अधीनस्थ लोग भी अपनी उद्दण्डता से जगत् को पीड़ित कर रहे हैं । उसके हाथी इन्द्र के हाथी ऐरावत को पराजित कर के पुष्कर-आवर्त्तक आदि मेघों में वप्रक्रीडा कर रहे है ।

उस महादैत्य के विनाश के लिए हमारे द्वारा किये गये समस्त उपाय उसी प्रकार निष्फल हो गए हैं जिस प्रकार सन्निपात ज्वर में शक्तिशाली औषधियाँ व्यर्थ हो जाती हैं । कभी निष्फल न होने वाला विष्णु का सुदर्शन चक्र भी उसका वध करने में असमर्थ है ।

अतः हे प्रभो ! तारकासुर के विनाश के लिए हम एक योग्य सेनापति की सृष्टि चाहते हैं, जिसके नेतृत्व में देवराज इन्द्र, बलपूर्वक अपहृत स्त्री के समान, उस दैत्य द्वारा अधिकृत विजयश्री प्राप्त करने में समर्थ हो सकें ।

तब ब्रह्मा ने कहा कि आपके इस अभीष्ट की पूर्ति अवश्य होगी, किंतु कुछ समय तक आपलोग प्रतीक्षा करें । मैंने उसके उग्र तप के प्रभाव को शमित करने की इच्छा से ही उसे वरदान दिया था, जिससे कि तप के तेज से वह जगत् को दग्ध न कर सके । अतः मेरे द्वारा ही वरदान प्राप्त करने वाला वह मेरे द्वारा ही वध के योग्य नहीं है, क्योंकि स्वयं ही संवर्धित विषवृक्ष को स्वयं ही काटना अनुचित है ।

तमोगुणातीत शिव का तेज (पुत्र) ही उसके शमन में समर्थ है । अतः आपलोग समाधिस्थ शिव को पार्वती के सौन्दर्य से आकृष्ट करने का यत्न करें---ऐसा कहकर ब्रह्मा अन्तर्हित हो गये और देवगण भी अपने कर्तव्य को दृष्टि में रखकर स्वर्गलोक चले गये । तब देवराज इन्द्र ने कार्यसिद्धि हेतु कामदेव का स्मरण किया । काम अपनी साज-सज्जा के साथ उपस्थित हुआ ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

॥ श्रीः ॥

कुमारसम्भवम्

संस्कृत-हिन्दी-व्याख्या-सहितम्

द्वितीयः सर्गः

तस्मिन् विप्रकृताः काले तारकेण दिवौकसः।
तुरासाहं पुरोधाय धाम स्वायम्भुवं ययुः ॥१॥

सञ्जीविनी—तस्मिन्निति। तस्मिन् काले पार्वतीशुश्रूषाकाले। तारकेण तारकनाम्ना वज्रणखपुत्रेण केनचिदसुरेण विप्रकृता उपप्लुताः। दिवमोकः स्थानं येषां ते दिवौकसो देवाः। "दिवं स्वर्गेऽन्तरिक्षे च" इति विश्वः। द्यौरोक इति पक्षे पृषोदरादित्वात्साधुः। तुरं त्वरितं साहयत्यभिभवतीति तुराषाट्। साहयतेश्चौरादिकात् क्विप्। "नहिवृतिवृषि"—इत्यादिना पूर्वपदस्य दीर्घः। प्रकृतिग्रहणे प्रातिपदिकस्यापि ग्रहणात्। मुग्धबोधकारस्तु तुराशब्दष्टाबन्त इत्याचष्टे। तं तुरासाहं देवेन्द्रम्। अजादिषु साड्रूपत्वाभावात् "सहेः साडः सः" इति षत्व न भवति। पुरोधाय पुरस्कृत्य। स्वयम्भुवो ब्रह्मण इदं स्वायम्भुवम्। संज्ञापूर्वकविधेरनित्यत्वात् "ओर्गुणः" इति गुणो न। धाम स्थानं, ययुः ब्रह्मलोकं जग्मुरित्यर्थः।

अन्वय—तस्मिन् काले तारकेण विप्रकृताः दिवौकसः तुरासाहं पुरोधाय स्वायम्भुवं धाम ययुः।

शब्दार्थ—तस्मिन् काले=उस समय। तारकेण=तारक (तारकनामक असुर) से। विप्रकृताः=भयभीत होकर। दिवौकसः=देवगण। तुरासाहम्=इन्द्र को। पुरोधाय=आगे रख कर (अर्थात् नेता बनाकर)। स्वायम्भुवम्=ब्रह्मा के। धाम=घर। ययुः=गये।

संस्कृत टीका—तस्मिन्काले=पार्वत्याः शिवार्चनसमये, तारकेण=तारकनाम्नासुरेण, विप्रकृताः=उपप्लुताः, दिवौकसः=देवगणः, तुरासाहम्=इन्द्रं, पुरोधाय=अग्रे कृत्वा, स्वायम्भुवं=ब्राह्मं, धामं=स्थानम्, ययुः=जग्मुः।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समास—दिवम् द्यौः वा ओकः येषां ते दिवौकसः (बहु०); तुरं साहयतीति तुरासाहम् (उपपदतत्पु०)।

व्याकरण—विप्रकृताः—वि+प्र+कृ+क्त, प्र० बहु०। दिवौकसः—दिव+ओकस्, अथवा द्यु+ओकस्, द्यु को दिव आदेश हुआ है, प्र० बहु०। तुरासाहम्—तुर+सह्+णि+क्विप, द्वि० एक०। पुरोधाय—पुरस्+धा+क्त्वा (=ल्यप्)। स्वायम्भुवम्—स्वयम्भू+अण्, आदि वृद्धि, 'ओर्गुणः' से गुण, द्वि० एक०। ययुः—या+लिट्, प्र० पु० बहु०।

अलङ्कार—अनुप्रास।

छन्द—अनुप्रास। अनुष्टुप्। अन्तिम श्लोक को छोड़कर सम्पूर्ण द्वितीय सर्ग में अनुष्टुप् छन्द है। अनुष्टुप् छन्द का लक्षण—

'श्लोके षष्ठ गुरुं ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम्।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः॥'

हिन्दी अनुवाद—उस समय (जिस समय पार्वती शिवार्चन में लगी हुई थीं) तारक (नामक असुर) से भयभीत (पीड़ित) होकर देवगण इन्द्र को (अपना) नेता बना कर ब्रह्मलोक गये।

विशेष—तात्पर्य यह है कि जिस समय शिव समाधिस्थ थे और पार्वती अपनी सखियों के साथ उनकी सेवा में संलग्न थीं, उस समय तारकासुर से पीड़ित देवता लोग इन्द्र के नेतृत्व में वृद्ध पितामह ब्रह्मा के पास तारकासुर के शमन का उपाय पूछने के लिए गये।

(१) पुराकाल में तारक नाम का एक अत्यन्त बलशाली असुर हुआ था, जिसके पिता का नाम वज्रनख और माता का नाम वराङ्गी था। तारकासुर ने तीनों लोकों को जीतने की इच्छा से घोर तपस्या की। उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्मा जी प्रकट हुए और उन्होंने उससे इच्छित वर माँगने को कहा। तब तारकासुर ने यह वरदान माँगा कि मुझे कोई मार न सके। ब्रह्मा ने वरदान दिया कि सात दिन की आयु के अतिरिक्त अन्य कोई तुम्हें नहीं मार सकता। अहंकार में डूबे हुए तारक ने सोचा कि सात दिन का बालक मेरा क्या बिगाड़ सकता है। अतः वह देवताओं को पीड़ित करने लगा। तब देवगण ब्रह्मा के पास गये। ब्रह्मा ने देवताओं से कहा कि शिव का

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुत्र कार्तिकेय तारकासुर का वध करेगा। अन्त में शिवपुत्र कार्तिकेय ने अपने जन्म के सातवें दिन तारकासुर का वध किया।

(२) स्वर्ग में निवास करने के कारण देवगण दिवौकस् कहलाते हैं।

(३) अत्यन्त शीघ्रता से शत्रुओं को अपने अधीन करने के कारण इन्द्र को तुराषाट् कहा जाता है।

(४) स्वयम्भू पद से ब्रह्मा को सर्वसामर्थ्यवान् होना सूचित होता है। ब्रह्मा सबके पितामह हैं, अतः देवतालोग उनसे तारकासुर के विनाश का उपाय पूछने के लिए गये, जिससे कि उनकी रक्षा हो सके। साथ ही देवताओं का यह भी मन्तव्य रहा होगा कि इसी बहाने उलाहना भी हो जायेगा कि, वरदान के द्वारा ब्रह्मा ने उसे उद्दण्ड बना दिया है।

शिवपुराण में भी प्रस्तुत श्लोक के समान वर्णन मिलता है—

'एतस्मिन्नन्तरे काले तारकेण दिवौकसः।
आदौ पराजिता आसन् शक्रदर्पविघातिना॥
तदा सर्वे तुरासाहं कृत्वाऽग्रे हृतविक्रमाः।
स्वायम्भुवं ययुर्धाम सत्यलोकमिति श्रुतम्॥'॥१॥

तेषामाविरभूद् ब्रह्मा परिम्लानमुखश्रियाम्।
सरसां सुप्तपद्मानां प्रातर्दीधितिमानिव॥२॥

सञ्जीविनी—तेषामिति। परिम्लाना परिक्षीणा मुखश्रीर्मुखकान्तिर्येषां तथोक्तानां तेषां देवानां ब्रह्मा। सुप्तपद्मानां मुकुलितारविन्दानां सरसां प्रातर्दीधितिमान् सूर्य इवाविरभूत्, प्रकाशोऽभूदित्यर्थः। "प्रकाशे प्रादुराविः स्यात्" इत्यमरः। सूर्योपमानेन तेषां म्लानिहरत्वं सूचितम्। अत्रोपमालङ्कारः।

अन्वय—परिम्लानमुखश्रियां तेषां ब्रह्मा सुप्तपद्मानां सरसां प्रातः दीधितिमान् इव आविरभूत।

शब्दार्थ—परिम्लान=(पूर्णरूप से) मलिन। मुखश्रियाम्=मुख की कान्ति वाले। तेषाम्=उन (देवताओं) के समक्ष। ब्रह्मा=ब्रह्मा। सुप्तपद्मानाम्=मुकुलित कमलों वाले। सरसाम्=सरोवरों के। प्रातः=प्रभातकाल। दीधितिमान्=सूर्य। इव=समान। आविरभूत्=प्रकट हुए।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संस्कृत टीका—परिम्लानमुखश्रियाम् = सर्वथामलिनमुखकान्तीनाम्, तेषाम् = देवानाम् (समक्षे), ब्रह्मा = स्वयंभूः, सुप्तपद्मानाम् = मुकुलितकमलानाम्, सरसाम् = सरोवराणाम्, प्रातः = प्रभातकाले, दीधितिमान् इव = सूर्य इव, आविरभूत् = प्रादुरभूत् ।

समास—मुखस्य श्रीः मुखश्रीः (ष०त०पु०), परिम्लाना मुखश्रीर्येषां ते, तेषाम् परिम्लानमुखश्रियाम् (बहु०), सुप्तानि पद्मानि येषां तानि सुप्तपद्मानि, तेषाम् सुप्तपद्मानाम् (बहु०) ।

व्याकरण—परिम्लान—परि + म्लै + क्त = परिम्लान । दीधितिमान्—दीधिति + मतुप् (प्र० एक० व०) । अभूत्—भू + लुङ्, प्र० पु० एक० ।

अलङ्कार—उपमा ।

हिन्दी अनुवाद—मुख की (स्वाभाविक) कान्ति से ही उन (देवताओं) के सामने ब्रह्मा (ठीक उसी तरह) प्रकट हुए, जैसे मुकुलित कमलों से युक्त जलाशयों के सम्मुख प्रभातकाल में सूर्य प्रकट होते हैं ।

विशेष—तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार सूर्य के उदित होते ही मुंदे हुए कमलपुष्प खिलकर जलाशय की शोभा में वृद्धि करते हैं, उसी प्रकार ब्रह्मा के प्रकट होते ही प्रसन्नता से विकसित हो गये ।

(१) तारकासुर से अपमानित होने के कारण देवताओं के मुख की कान्ति क्षीण हो गई थी । लज्जा और ग्लानि के कारण उनके मुख लटक गए थे । (२) सुप्तपद्मानाम् पद के द्वारा देवताओं का घोर कष्ट ध्वनित हो रहा है । (३) प्रातःकाल ब्रह्मा सूर्य की भाँति प्रकट हुए । इसके द्वारा ब्रह्मा का अत्यन्त सामर्थ्यवान् होना सूचित होता है ।

शिवपुराण में भी प्रस्तुत श्लोक के सदृश वर्णन मिलता है—

'दृष्ट्वा तत्र जगन्नाथं विकसत्सु मुखश्रियः ।
बभूव पङ्कजानीव प्रातर्दृष्ट्वा दिवाकरम् ॥'॥२॥

अथ सर्वस्य धातारं ते सर्वे सर्वतोमुखम् ।
वागीशं वाग्भिरर्थ्याभिः प्रणिपत्योपतस्थिरे ॥३॥

सञ्जीविनी—अथेति । अथाविर्भावानन्तरं सर्वे ते देवाः सर्वतः समन्ततो मुखानि यस्य तं सर्वतोमुखम्, चतुर्मुखमित्यर्थः । वाचां विद्यानामीशं वागीशं

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सर्वस्य जगतो धातारं स्रष्टारं ब्रह्माणं प्रणिपत्य नमस्कृत्य। अर्थादनपेताभिरर्थ्याभिः, अर्थयुक्ताभिरित्यर्थः। "धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते" इति यत्प्रत्ययः। वाग्भिः उपतस्थिरे, तुष्टुवुरित्यर्थः। उपाद्देवपूजासङ्गतिकरणमित्रकरणपथिष्विति वक्तव्यम्।" इत्यात्मनेपदम्।

अन्वय—अथ सर्वे ते सर्वतोमुखं वागीशं सर्वस्य धातारं प्रणिपत्य अर्थ्याभिः वाग्भिः उपतस्थिरे।

शब्दार्थ—अथ = ब्रह्मा के प्राकट्य के अनन्तर। सर्वे = सब। ते = उन्होंने (देवताओं ने)। सर्वतोमुखम् = सब ओर मुख वाले (अर्थात् चतुर्मुख), वागीशम् = वाणी के स्वामी। सर्वस्य = सब के। धातारम् = उत्पन्न करने वाले। प्रणिपत्य = नमस्कार करके। अर्थ्याभिः = अर्थगर्भा। वाग्भिः = वाणी के द्वारा। उपतस्थिरे = स्तुति करने लगे।

संस्कृत टीका—अथ = तदनन्तरम्, ब्रह्मप्राकट्यानन्तरम्, सर्वे ते = समस्तदेवाः, सर्वतोमुखम् = चतुर्मुखम्, चतसृषु दिक्ष्वपि मुखवन्तम्, वागीशम् = वाक्पतिं ब्रह्माणम्, सर्वस्य धातारम् = विश्वस्य स्रष्टारम्, प्रणिपत्य = प्रणम्य, अर्थ्याभिः = अर्थयुक्ताभिः, वाग्भिः = वचोभिः, उपतस्थिरे = स्तोतुमारब्धाः।

समास—सर्वतः मुखानि यस्य सः, तं सर्वतोमुखम् (बहु०)। वाचाम् ईशः, तं वागीशम् (ष० तत्पु०)।

व्याकरण—सर्वतः—सर्व + तसिल्। प्रणिपत्य—प्र + नि + पत् + क्त्वा (= ल्यप्)। अर्थ्याभि—अर्थ + यत्, तृ० बहु। उपतस्थिरे—उप + स्था, लिट्, प्र० पु० बहु०।

अलङ्कार—अनुप्रास।

हिन्दी अनुवाद—तब (ब्रह्मा के प्राकट्य के अनन्तर) वे देवगण जगत् के उत्पत्ति कर्ता, वाणी के स्वामी, चतुर्मुख ब्रह्मा को प्रणाम करके अर्थगर्भा वाणी के द्वारा स्तुति करने लगे।

विशेष—(१) ब्रह्मा समस्त श्रुतियों के स्रोत हैं, अतः उन्हें वाणी का स्वामी कहा गया है। (२) रजोगुण समन्वित होने के कारण समस्त धर्मशास्त्रों तथा पुराणों में ब्रह्मा को जगत् का सृष्टिकर्ता कहा गया है। (३) अर्थयुक्त

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वाणी से तात्पर्य यह है कि देवताओं ने ब्रह्मा को प्रसन्न करने के लिए जो स्तुति की वह चाटुकारिता पूर्ण नहीं थी, अपितु अक्षरशः सत्य थी ॥३॥

नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं प्राक्सृष्टेः केवलात्मने ।
गुणत्रयविभागाय पश्चाद् भेदमुपेयुषे ॥४॥

सञ्जीविनी—स्तुतिप्रकारमाह–'नमः' इत्यादिभिर्द्वादशभिः श्लोकैः—नम इति । हे भगवन् इत्यध्याहार्यं व्याख्येयम् । सृष्टेः प्राक् । "अन्यारात्—" इत्यादिनाऽञ्चूत्तरपदयोगे पञ्चमी । केवलात्मन एकरूपाय । 'आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्' इति श्रुतेः । "निर्णीते केवलमिति त्रिलिङ्गं त्वेककृत्स्नयोः" इत्यमरः । पश्चात्सृष्टिप्रवृत्तिकाले । विभज्यतेऽनेनेति विभागः । गुणानां सत्त्वादीनां त्रयमेव विभागो यस्य तस्मै । "गुणाः सत्त्वं रजस्तमः" इत्यमरः । भेदमुपाधिम्, स्रष्टृत्वादिकमित्यर्थः । उपेयुषे प्राप्तवते । "उपेयिवाननाश्वाननूचानश्च" इति निपातः, अत एव त्रिमूर्तये ब्रह्मविष्णुरुद्ररूपिणे तुभ्यं नमः । "नमः स्वस्ति—" इत्यादिना चतुर्थी । उक्तं च—'नमो रजोजुषे सृष्टौ स्थितौ सत्त्वमयाय च । तमोरूपाय संहारे त्रिरूपाय स्वयम्भुवे ॥'

अन्वय—सृष्टेः प्राक् केवलात्मने पश्चात् गुणत्रयविभागाय भेदम् उपेयुषे त्रिमूर्तये तुभ्यं नमः ।

शब्दार्थ—सृष्टेः प्राक् = सृष्टि से पहले । केवलात्मने = (अद्वैत) एकरस । पश्चात् = तदनन्तर । गुणत्रयविभागाय = तीन गुणों के विभागार्थं । भेदम् = उपाधि को । उपेयुषे = प्राप्त । त्रिमूर्तये = (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) इन तीन स्वरूप वाले । तुभ्यम् = आपको । नमः = नमस्कार है ।

संस्कृत टीका—सृष्टेः = जगद्-विधानात् सर्गात् वा, प्राक् = पूर्वम्, केवलात्मने = एकस्वरूपाय पश्चात् = अनन्तरम्, सृष्टयारम्भकाले, गुणत्रयमेव = सत्त्वरजस्तमोरूपाः त्रयो गुणा एव विभागा विभाजको यस्य तस्मै, एकस्य त्रिधा ब्रह्मा-विष्णु-शिवात्मना विभागकरणे, भेदं = उपाधिम्, सृष्टिपालनसंहारकर्तृत्वरूपमुपाधिं प्राप्तवते, त्रिमूर्तये = ब्रह्मविष्णुरुद्ररूपिणे, तुभ्यम् = ते, नमः = प्रणामोऽस्ति ।

समास—केवलः आत्मा यस्य सः केवलात्मा, तस्मै केवलात्मने (बहु०) । गुणानां त्रयं गुणत्रयम् (ष० तत्पु०) गुणत्रयमेव विभागः यस्य सः

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गुणत्रयविभागः, तस्मै गुणत्रयविभागाय (बहु०)। तिस्रः मूर्तयः यस्य सः, तस्मै त्रिमूर्तये (बहु०)।

व्याकरण—सृष्टेः प्राक्—प्राक् शब्द के योग में पञ्चमी। उपेयुषे—उप +इ+क्वसु, च० एक०। तुभ्यं नमः—'नमः' के योग में चतुर्थी।

अलंकार—परिकर।

हिन्दी अनुवाद—सृष्टि (काल) के पहले एकरस (रूप में विद्यमान) तत्पश्चात् सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण के रूप में अपने को विभक्त करने वाले पुनः ब्रह्मा, विष्णु और शिव (अर्थात् जन्म, स्थिति और संहार की कारणभूत) उपाधि रूपधारी त्रिमूर्ति स्वरूप आपको (हम देवगण का) नमस्कार है।

विशेष—प्रस्तुत श्लोक में वेदों तथा उपनिषदों में वर्णित अद्वैत ब्रह्म का निरूपण किया गया है—'आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्' इति श्रुतेः; 'सदेव सोम्येदमग्रासीदेकमेवाऽद्वितीयम्'—छान्दोग्य उपनिषद् ६।२।१।, भागवत पुराण में भी उल्लेख है—'भगवानेक आसेदमग्र आत्मनां विभुः' ३।५।२३। (२) सांख्य मतानुसार माया अथवा प्रकृति त्रिगुणात्मिका है। सत्त्व, रजस् और तमस्—इन तीनों गुणों की साम्यावस्था ही प्रकृति है। ईश्वर भी त्रिगुणात्मक आवश्यकतानुसार वह इन गुणों के पृथक्-पृथक भेद के आधार रूप धारण करता है। सत्त्वगुण प्रधान विष्णु, रजोगुण प्रधान ब्रह्मा और तमोगुण प्रधान शिव—ये एक ही परम ब्रह्म के पृथक्-पृथक् रूप हैं॥४॥

यदमोघमपामन्तरुप्तं बीजमज ! त्वया।
अतश्चराचरं विश्वं प्रभवस्तस्य गीयसे॥५॥

सञ्जीविनी - यदिति। न जायत इत्यजः, हे अज ! अपां जलानामन्तस्त्वया यदमोघमवन्ध्यं बीजं वीर्यमुप्तं निक्षिप्तम्। 'मुक्तम्' इति पाठे विसृष्टमित्यर्थः। "शुक्रं तेजोरेतसी च बीजवीर्येन्द्रियाणि च" इत्यमरः। अतस्ते बीजाच्चराचरं स्थावरजङ्गमात्मकम्। समाहारे द्वन्द्वैकवद्भावः। विश्वं जगत्, उत्पन्नमिति शेषः। तस्य विश्वस्य। प्रभवत्यस्मादिति प्रभवः कारणं गीयसे। 'अदश्चराचरं विश्वं प्रसवस्तस्य गीयते' इति पाठे अदः इदं चराचरं विश्वं तस्य बीजस्य प्रसवो गीयते, लोके इति शेषः। अत्र मनुः—"अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यमवासृजत्। तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम्॥" इति।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्वय—हे अज ! अपाम् अन्तः यद् अमोघं बीजं त्वया उप्तम् अतः चराचरं विश्वम् (उत्पन्नम्) तस्य भवः गीयसे।

शब्दार्थ—अज = अजन्मा। अपाम् = जल के। अन्तः = मध्य। यत् = जिस। अमोघम् = अव्यर्थ। बीजम् = वीर्य। उप्तम् = वपन किया। अतः = इससे। चराचरम् = जड़, जङ्गम। विश्वम् = जगत् (सृष्ट हुआ)। तस्य = उसके (अर्थात् उत्पन्न विश्व के)। प्रभवः = जन्म देने वाले (के रूप में)। गीयसे = प्रशंसित होते हैं।

संस्कृत टीका—हे अज = अजन्मा, अपाम् = जलानाम्, अन्तः = मध्ये, त्वया = भवता, यद् अमोघम् = यत् सफलम्, बीजम् = वीर्यम्, उप्तम् = निक्षिप्तम्, अतः = अस्मात् ते बीजात्, चराचरम् = जड-जङ्गमम्, विश्वम् = जगत् उत्पन्नमभूत, तस्य = जगतः, प्रभवः = कारणम्, गीयसे = स्तूयसे। त्वमिति शेषः। अर्थात् अस्य जगतः त्वमेव सृष्टिकर्तेति स्तूयसे।

समास—न ओघः अमोघः तत् अमोघम् (नञ् तत्पु०)। चराश्च अचराश्च तयोः समाहारः, तत् चराचरम् (समाहार द्वन्द्व)।

व्याकरण—उप्तम्—वप् + क्त, प्र० पु० एक०। प्रभवः—प्र + भू + अप्। गीयसे—गै (कर्मणि) + य + लट्, म० पु० एक०।

हिन्दी अनुवाद—हे अजन्मा ! आपने जल के मध्य जिस (कभी भी) व्यर्थ न होने वाले वीर्य का वपन किया, उसी से चराचर जगत् सृष्ट हुआ। (और) आप उस विश्व के जन्मदाता कहलाते हैं।

विशेष—(१) ब्रह्म को अजन्मा कहा गया है, क्योंकि वही इस सृष्टि का आदि कारण है, उससे पूर्व उसका कोई कारण विद्यमान नहीं था। (२) विश्व के समस्त प्राणी दो भागों में विभाजित हैं—१–स्थावर—स्थिर रहने वाले वृक्ष आदि। २–जङ्गम— चलने-फिरने वाले मनुष्यादि ॥५॥

तिसृभिस्त्वमवस्थाभिर्महिमानमुदीरयन्।
प्रलय-स्थिति-सर्गाणामेकः कारणतां गतः ॥६॥

सञ्जीविनी—तिसृभिरिति। एकः सृष्टेः प्राक्केवलस्त्वं तिसृभिरवस्थाभिस्त्रैगुण्यमयीभिर्ब्रह्मरहरब्रह्मस्वरूपाभिर्महिमानं निजशक्तिमुदीरयन् विजृम्भयन्

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रलय-स्थिति-सर्गाणाम्=तत्स्थित्युत्पत्तीनां कारणतां गतः इदं 'पश्चाद्भेदमुपेयुषे' इत्यस्य विवरणम् अतो न गतार्थत्वदोषः।

अन्वय—एकः त्वं तिसृभिः अवस्थाभिः महिमानम् उदीरयन् प्रलयस्थिति-सर्गाणां कारणतां गतः।

शब्दार्थ—एकः=केवल या एकरूप। त्वम्=आप। तिसृभिः=तीन। अवस्थाभिः=अवस्थाओं के द्वारा। महिमानम्=(अनन्त) महिमा को। उदीरयन्=प्रकाशित करते हुए। प्रलय=संहार। स्थिति=पालन। सर्ग=सृष्टि (के)। कारणताम्=कारण भाव को। गतः=प्राप्त किया है।

संस्कृत टीका—एकः=सृष्टेः पूर्वमेकाकी, त्वं=भवान्, तिसृभिः=ब्रह्मविष्णुशिवरूपाभिः त्रिसंख्याकाभिः, अवस्थाभिः=दशाभिः, महिमानं=महत्त्वं निजशक्तिं वा, उदीरयन्=उत्कृष्टतया प्रकटयन्, प्रलयस्थितिसर्गाणां=संहार-पालन-सृष्टीनाम्, कारणतां=हेतुत्वम्, गतः=प्राप्तः।

समास—प्रलयश्च स्थितिश्च सर्गश्च इति प्रलयस्थितिसर्गाः, तेषाम् प्रलय-स्थितिसर्गाणाम् (द्वन्द्व)।

व्याकरण—महिमानम्—महत्+इमनिच्, द्वि० एक०। उदीरयन्—उद्+ईर्+णि+शतृ, प्र० एक०। कारणताम्—कारण+तल्+टाप्, द्वि० एक०।

हिन्दी अनुवाद—(सृष्टि के प्रारम्भ में) एकमेव आपने (ब्रह्मा विष्णु, महेश रूपात्मक) तीन अवस्थाओं से अपने महत्त्व को प्रकाशित करते हुए (सम्पूर्ण विश्व के) संहार, पालन और उत्पत्ति की कारणता को प्राप्त किया है।

विशेष—परमात्मा की तीनों अवस्थाओं का उल्लेख निम्नांकित श्लोक में किया गया है।—

'ब्रह्मत्वे सृजते लोकान् विष्णुत्वे पालयत्यपि।
रुद्रत्वे संहरत्येव तिस्रोऽवस्थाः स्वयम्भुवः॥'६॥

स्त्रीपुंसावात्मभागौ ते भिन्नमूर्तेः सिसृक्षया।
प्रसूतिभाजः सर्गस्य तावेव पितरौ स्मृतौ॥७॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सञ्जीविनी—भूतसृष्टिकर्तृत्वमुक्त्वा मिथुनसृष्ट्यर्थं मूर्तिमतो ब्रह्मणो भेदमाह—स्त्रीपुंसाविति। स्त्री च पुमांश्च स्त्रीपुंसौ। "अचतुर—" इत्यादिनाऽच्प्रत्ययान्तो निपातः। सिसृक्षया स्रष्टुमिच्छया भिन्नमूर्तेर्द्विधाकृतविग्रहस्य ते तवात्मनो देहस्य भागावात्मभागौ। "आत्मा जीवे धृतौ देहे स्वभावे परमात्मनि" इति विश्वः। तावेव भागौ प्रसूतिभाज उत्पत्तिभाजः। सृज्यत इति सर्गस्तस्य, निजसृष्टेरित्यर्थः। माता च पिता च पितरौ। "पिता मात्रा" इत्येकशेषः। स्मृतौ—'वृद्धै'रिति शेषः। अत्र मनुः—

'द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत्।
अर्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत्प्रभुः॥'

अन्वय—स्त्रीपुंसौ सिसृक्षया भिन्नमूर्तेः ते आत्मभागौ स्तः। तौ एव प्रसूतिभाजः सर्गस्य पितरौ स्मृतौ।

शब्दार्थ—स्त्रीपुंसौ = स्त्री तथा पुरुष। सिसृक्षया = उत्पन्न करने की इच्छा से। भिन्नमूर्तेः - विभिन्न स्वरूपों से युक्त। ते = आपके। आत्मभागौ = स्वयं के भाग। स्तः = हैं। प्रसूतिभाजः = जायमान। सर्गस्य = सृष्टि के। पितरौ = माता-पिता। स्मृतौ = बताये गये हैं।

संस्कृत टीका—स्त्रीपुंसौ = स्त्रियं पुरुषं च, सिसृक्षया = निर्माणेच्छया, भिन्नमूर्तेः = द्वेधा विभक्तस्य शरीरस्य, ते = तव, आत्मभागौ = स्वदेहांशौ, स्तः = विद्येते। तौ = उक्तावात्मभागौ, एव = निश्चयेन, प्रसूतिभाजः = जन्मशीलस्य जायमानस्य वा, सर्गस्य = जगतः, पितरौ = मातापितरौ, स्मृतौ = कथितौ।

समास—स्त्री च पुमांश्च तौ स्त्रीपुंसौ (द्वन्द्व)। भिन्ना मूर्तिः यस्य सः, तस्य भिन्नमूर्तेः (बहु०)। आत्मनः भागः आत्मभागः, तौ आत्मभागौ (ष० तत्पु०)। प्रसूतिं भजतीति सः, तस्य प्रसूतिभाजः (उपपदतत्पु०), माता च पिता च तौ पितरौ (द्वन्द्व)।

व्याकरण—सिसृक्षया—सृज् + सन् + टाप्, तृ० ए० व०।

हिन्दी अनुवाद—सृजन की इच्छा से नाना स्वरूप वाले आपके शरीर के स्त्री तथा पुरुष दो (अलग-अलग मालूम पड़ने वाले) भाग हैं। उन्हें ही जायमान सृष्टि का माता-पिता कहा गया है।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विशेष—कवि का आशय यह है कि सामान्य संसार में सृष्टि व्यापार के लिए स्त्री-पुरुष की आवश्यकता होती है। किन्तु ब्रह्म स्वयं समर्थ है, स्वयम्भु है, अतः सृष्टि के लिए उसे अपने से इतर किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं पड़ती है। वह स्वयं में ही स्त्री और पुरुष दोनों है, इसलिए उसे अर्धनारीश्वर कहा गया है ॥७॥

स्वकालपरिमाणेन व्यस्तरात्रिन्दिवस्य ते ।
यौ तु स्वप्नावबोधौ तौ भूतानां प्रलयोदयौ ॥८॥

सञ्जीविनी—स्वकालेति । स्वकालस्य परिमाणेन 'चतुर्युगसहस्राणि ब्रह्मणो दिनमुच्यते' इत्युक्तरूपेण व्यस्तं विभक्तं रात्रिन्दिवं रात्र्यहनी यस्य तस्य। यद्यपि "अचतुर--" इत्यादिसूत्रेण रात्रौ च दिवा च रात्रिन्दिवमिति सप्तम्यर्थे वृत्तौ द्वन्द्व इत्युक्तं तथापि 'दोषामन्यमहः, दिवामन्या रात्रिः' इत्यादौ कर्मवदत्रापि प्रातिपदिकार्थवृत्तित्वं कथञ्चित्प्रयोगबलादाश्रयणीयम् । ते तव यौ तु स्वप्नावबोधौ तावेव भूतानां प्रलयोदयौ संहारसृष्टी। यदाहुः—

'यदा स देवो जागर्ति तदैव चेष्टते जगत् ।
यदा स्वपिति शान्तात्मा तदा सर्वं प्रलीयते ॥' इति ।

एतच्च दैनन्दिनसृष्टिप्रलयाभिप्रायकं महाप्रलयस्य ब्रह्मणो वर्षशतान्ते भावित्वात् ।

अन्वय—स्वकालपरिमाणेन व्यस्तरात्रिन्दिवस्य ते यौ तु स्वप्नावबोधौ तौ भूतानां प्रलयोदयौ ।

शब्दार्थ—स्वकालपरिमाणेन = स्वयं (निर्मित) काल के परिमाण से। व्यस्तरात्रिन्दिवस्य - रात्रि तथा दिन को बाँटे हुए। ते = आपके। यौ = जो (दो)। स्वप्नावबोधौ = स्वप्न और जागरण। तौ = वे। भूतानाम् = भूत समुदाय के लिए। प्रलयोदयौ = प्रलय और सृष्टि (हैं)।

संस्कृत टीका—स्वकालपरिमाणेन = चतुर्युगसहस्ररूपैकदिनप्रमाणेन, व्यस्तरात्रिन्दिवस्य = विभक्तरात्र्यहन्याः, ते = तव, यौ तु स्वप्नावबोधौ = यौ तव निद्रोद्बोधौ (वर्तेते), तौ = तथाभूतौ स्वप्नजागरणे, भूतानाम् = प्राणिनां, प्रलयोदयौ = संहारोत्पत्ती (स्तः)।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समास—स्वस्य कालः स्वकालः (ष० तत्पु०), स्वस्य कालस्य परिमाणं स्वकालपरिमाणं तेन स्वकालपरिमाणेन (ष० तत्पु०)। रात्रौ च दिवा च रात्रिन्दिवम् (द्वन्द्व), व्यस्तं रात्रिन्दिवं यस्य सः, तस्य व्यस्तरात्रिन्दिवस्य (बहु०)। स्वप्नश्च अवबोधश्च तौ स्वप्नावबोधौ (द्वन्द्व) प्रलयश्च उदयश्च तौ प्रलयोदयौ (द्वन्द्व)।

व्याकरण—व्यस्त–वि + अस् + क्त। रात्रिन्दिव–रात्रि + दिव + अच्।

हिन्दी अनुवाद—स्वयं के काल प्रमाण से (आपने) दिन और रात्रि का विभाजन किया है। आपके जो स्वप्न और जागरण (हैं) वे (ही) भूत समुदाय (अर्थात् प्राणियों) के लिए प्रलय और सृष्टि हैं।

विशेष—एक कल्प में चार युग होते हैं—सतयुग अथवा कृतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग। एक कल्प का परिमाण ४३,२०,०.० मानव वर्ष है। चारों युगों के एक हजार बार व्यतीत हो जाने पर ब्रह्मा का एक दिन होता है। इस प्रकार ब्रह्मा के एक दिन परिमाण एक हजार कल्प (महायुग) अथवा ४,३२०,०००,००० मानव वर्ष है। और इतनी ही बड़ी ब्रह्मा की रात्रि होती है। ब्रह्मा जब शयन करते हैं तब प्रलय होता है और जब जागते हैं तब जगत् की सृष्टि होती है। इस प्रकार ब्रह्मा ही प्रलय और उत्पत्ति के कारणभूत हैं। कहा भी गया है—

'यदा स देवो जागर्ति तदैव चेष्टते जगत्।
यदा स्वपिति शान्तात्मा तदा सर्वं प्रलीयते'॥८॥

जगद्योनिरयोनिस्त्वं जगदन्तो निरन्तकः।
जगदादिरनादिस्त्वं जगदीशो निरीश्वरः॥९॥

सञ्जीविनी—जगदिति। हे भगवन्! त्वं जगद्योनिर्जगत्कारणं स्वयमयोनिरनादित्वादकारणकस्त्वम्। अन्तयतीत्यन्तः। पचाद्यच्। जगतोऽन्तर्जगत्संहर्ता स्वयं निरन्तको नित्यत्वादन्तरहितः। त्वं जगतामादिर्जगदादिः, सृष्टेः प्रागपि सन्नित्यर्थः। अत एव त्वमनादिरादिरहितः। जगतामीशो नियन्ता स्वयं निरीश्वरः, अनियम्य इत्यर्थः। 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते' इत्यादि श्रुतिरेवात्र प्रमाणम्। अत्र 'अयोनिः' इत्यादौ नञ् तत्पुरुषाश्रयणे विरोधः, बहुव्रीहिणा तु तत्परिहार इति विरोधाभासालङ्कारः। यथाहुः—"विरोधाभासत्वे विरोधः" इति।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्वय—त्वं जगद्योनिः, (स्वयं) अयोनिः, जगदन्तः (स्वयं) निरन्तकः, त्वं जगदादिः, (स्वयं) अनादिः। त्वं जगदीशः (स्वयं) निरीश्वरः।

शब्दार्थ—जगद्योनिः=संसार के हेतु। अयोनिः=जिसका अन्य हेतु नहीं है। जगदन्तः=संसार का विनाश करने वाले, निरन्तकः=जिसका कोई अन्त करने वाला नहीं है। जगदादिः=संसार के आदि में वर्तमान। अनादिः=जो आदि रहित है। जगदीशः=संसार के नियमन कर्ता। निरीश्वरः=जिसका कोई ईश्वर नहीं है (अर्थात् नियमन करने वाला नहीं है)।

संस्कृत टीका—त्वम्=भवान्, जगद्योनिः=जगतः कारणम्, (स्वयन्तु) अयोनिः=अकारणकः (अस्ति), जगदन्तः=जगतः संहारकः, (स्वन्तु) निरन्तकः=संहारकरहितः (अस्ति)। त्वम्=भवान्, जगदादिः=सृष्टेः प्रागपि विद्यमानत्वात् जगतः आदिभूतः, (स्वयन्तु) अनादिः=आदिरहितः (अस्ति), जगदीशः=विश्वेशः जगन्नियामकः वा, (स्वयन्तु) निरीश्वरः=नियामकरहितश्चास्ति।

समास—जगतः योनिः जगद्योनिः (ष० तत्पु०), अविद्यमानः योनिः यस्य सः अयोनिः (बहु०)। जगतः अन्तः जगदन्तः (ष० तत्पु०), निर्गतः अन्तः यस्मात् सः निरन्तकः (बहु०)। जगताम् आदिः जगदादिः (ष०तत्पु०)। अविद्यमानः आदिर्यस्य सः अनादिः (बहु०)। जगताम् ईशः जगदीशः (ष० तत्पु०)। निर्गतः ईश्वरः यस्मात् सः निरीश्वरः (बहु०)।

व्याकरण—निरन्तकः—निर्+अन्त+कप्।

अलङ्कार—विरोधाभास।

हिन्दी अनुवाद—आप संसार के हेतु हैं किन्तु आपका कोई (अन्य) हेतु नहीं है। आप विश्व के अन्तकर्त्ता हैं किन्तु आप स्वयं अविनाशी हैं। आप सृष्टि के आदि में विद्यमान होते हुए भी अनादि हैं। आप सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं किन्तु आपका नियमन करने वाला (कोई दूसरा) नहीं है।

विशेष—कवि का आशय यह है कि ब्रह्म कारणों का कारण है, फलतः अकारण है, देवताओं का उस महिमान्वित पुरुष के पास पहुँचना उनके दुःखों के अन्त का सूचक है॥९॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आत्मानमात्मना वेत्सि सृजस्यात्मानमात्मना ।
आत्मना कृतिना च त्वमात्मन्येव प्रलीयसे ।। १० ।।

सञ्जीविनी—तव तु न प्रपञ्चस्येव जन्मतिरोधानज्ञानेषु परापेक्षेत्याह—आत्मानमिति । हे भगवन् ! त्वमात्मानं लोकानुग्रहार्थं ब्रह्मरूपेणोत्पिपादयिषितं स्वस्वरूपमात्मनैव वेत्सि जानासि । सर्वाऽपि क्रिया कर्तव्यार्थज्ञानपूर्विकेति भावः । तथात्मानमात्मनैव । आत्मन्येवेत्यत्रापि सम्बध्यते । स्वस्मिन्नेव सृजसि, अधिष्ठानमपि स्वयमेवेत्यर्थः । 'स्वे महिम्नि प्रतिष्ठितम्' इति श्रुतेः । कृतिना समर्थेन । इदं सर्वत्र सम्बध्यते । आत्मना स्वेनैवात्मन्येव प्रलीयसे, स्वस्मिन्नेव प्रलीनो भवसि । लीयतेर्दैवादिकात्कर्तरि लट् । "प्रकृत्यादिभ्य उपसङ्ख्यानम्" इति वार्तिकात्सर्वत्रात्मनेति तृतीया । न हि ते प्रपञ्चस्येव ज्ञानोत्पत्तिलयेषु परापेक्षेति फलितार्थः ।

अन्वय—त्वम् आत्मानम् आत्मना वेत्सि । आत्मानम् आत्मना सृजसि । (त्वम्) कृतिना आत्मना च आत्मनि एव प्रलीयसे ।

शब्दार्थ—आत्मानम् = स्वयं को । आत्मना = स्वयं से । वेत्सि = जानते हैं । सृजसि = उत्पन्न करते हैं । कृतिना = कृतकृत्य (होकर) । आत्मना स्वयं से । आत्मन्येव = स्वयं में ही (अर्थात् अपनी आत्मा में) । प्रलीयसे = लीन होते हैं ।

संस्कृत टीका—त्वम् = भवान्, आत्मानम् = निजस्वरूपम्, आत्मना = स्वयमेव, वेत्सि = जानासि, आत्मानम् = स्वम्, आत्मना = स्वयमेव, सृजसि = जनयसि, जगद्रूपेण प्रकटयसि वा, कृतिना = कृतकृत्येन, आत्मना = स्वरूपेण, आत्मनि = स्वरूपे, प्रलीयसे = तिरोदधासि, विलीनो भवसि वा ।

समास—अतति व्याप्नोति इत्यात्मा, तम् आत्मानम् । कृतम् अस्यास्तीति कृती, तेन कृतिना, तृ० ए० व० ।

व्याकरण—वेत्सि—विद् + लट्, म० पु० एक० । प्रलीयसे—प्र + ली + लट्, म० पु० एक० ।

हिन्दी अनुवाद—आप स्वयमेव स्वयं को जानने वाले हैं । आपने स्वयं ही स्वयं को उत्पन्न किया है । (कार्य पूर्ण कर लेने पर) कृतकृत्य होकर (आप) अपने स्वयं को अपनी आत्मा में ही विलीन कर लेते हैं ।

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विशेष—ब्रह्म से जायमान होने के कारण सब कुछ ब्रह्मरूप ही है। जैसे समुद्र की तरंगें समुद्र से अलग नहीं हैं, वैसे ही सारा जगत् ब्रह्म में ही विद्यमान है ॥१०॥

द्रवः सङ्घातकठिनः स्थूलः सूक्ष्मो लघुर्गुरुः ।
व्यक्तो व्यक्तेतरश्चासि प्राकाम्यं ते विभूतिषु ॥११॥

सञ्जीविनी—द्रव इति। त्वम् इत्यनुषज्यते। हे भगवन्! त्वं द्रवः सरित्समुद्रादिवद्रसात्मकोऽसि। सङ्घातेन निविडसंयोगेन कठिनो महीधरादिवत्। स्थूल इन्द्रियग्रहणयोग्यो घटादिवत्। सूक्ष्मोऽतीन्द्रियः परमाण्वादिवत्। लघुरुत्पतनयोग्यस्तूलादिवत्। गुरुर्हेमाद्रिवदचलनीयः। व्यक्तः कार्यरूपोऽसि। व्यक्तेतरः कारणरूपश्चासि। एवं विभूतिष्वणिमादिषु ते तव। प्रकामस्य भावः प्राकाम्यं यथाकामत्वम्।

अन्वय—(त्वम्) द्रवः सङ्घातकठिनः स्थूलः सूक्ष्मः लघुः गुरुः व्यक्तः व्यक्तेतरः च असि, विभूतिषु ते प्राकाम्यम्।

शब्दार्थ—द्रवः = रसरूप। सङ्घातकठिनः = दृढ संयोग से कठोर। स्थूलः = इन्द्रिय ग्राह्य। सूक्ष्मः = इन्द्रियातीत। लघुः = उत्पतन योग्य। गुरुः = भारी (अचल)। व्यक्तः = दिखाई देने योग्य। व्यक्तेतरः = अव्यक्त। विभूतिषु = अणिमा आदि अष्ट सिद्धियों में। प्राकाम्यम् = स्वेच्छाचारिता।

संस्कृत टीका—(हे ब्रह्मन्!) त्वम् = भवान्, द्रवः = जलादिवद् रसरूपो (असि), सङ्घातकठिनः = (वज्रादिवत्) दृढतरसम्बन्धेन कठोरः (असि), स्थूलः = (घटपटादिवत्) इन्द्रियगोचरः (असि), सूक्ष्मः = (परमाण्वादिवत्) अतीन्द्रियः इन्द्रियाज्ञेयः वा (असि), लघुः = (तूलादिवत्) उत्पतनयोग्यः, भारहीनः वा (असि), गुरुः = (पर्वतवत्) भारवान् (असि), व्यक्तः = कार्यरूपः (असि), व्यक्तेतरः = (कारणरूपेण) अव्यक्तः (असि), विभूतिषु = ऐश्वर्येषु अणिमादिषु, ते = तव, प्राकाम्यं = यथाकामत्वं स्वेच्छाचारित्वं वा (अस्ति)।

समास—सङ्घातेन कठिनः सङ्घातकठिनः (तृ० तत्पु०)। व्यक्तात् इतरः व्यक्तेतरः (प० तत्पु०)।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

व्याकरण—प्राकाम्यम्—प्रकामस्य भावः, प्रकाम + ष्यञ् ।

अलङ्कार—परिकर ।

हिन्दी अनुवाद—आप (जल की तरह) द्रवरूप हैं, (वज्रादि की तरह) कठोर हैं, (घट-पट के समान) स्थूल हैं, (परमाणु के समान) सूक्ष्म हैं (रूई की तरह आकाश में) उत्पतन योग्य हैं, (पर्वत के समान) अचल हैं, आप (कार्य के रूप में) व्यक्त हैं तथा (कारण के रूप में) अव्यक्त हैं । अष्टसिद्धियों में से इच्छानुसार किसी सिद्धि को दिखा सकते हैं ।

विशेष—(१) देवताओं की प्रार्थना का आशय है कि हे प्रभु ! आप सर्वव्यापक एवं सर्वरूप हैं । (२) अणिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, महिमा, ईशिता, वशिता और कामावसायिता—ये आठ प्रकार की सिद्धियाँ बतलाई गयी हैं ॥११॥

उद्घातः प्रणवो यासां न्यायैस्त्रिभिरुदीरणम् ।
कर्म यज्ञः फलं स्वर्गस्तासां त्वं प्रभवो गिराम् ॥१२॥

सञ्जीविनी—उद्घात इति । हे भगवन् ! यासां गिरां वाचामुद्घात उपक्रमः प्रणव ओङ्कारात्मकः । "ओङ्कारप्रणवौ समौ" इति । "स्यादभ्यादानमुद्घात आरम्भः" इति चामरः । इदमुपसंहारस्याप्युपलक्षणम् ।

'ब्रह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वतः ।
दहत्येनः कृतं पूर्वं परस्ताच्च विशेषतः ॥'

इति निरुक्तपरिशिष्टयोर्यास्कः । नीयन्त एभिरर्थविशेषा इति न्यायाः स्वराः । उक्तञ्च—'स्वरविशेषादर्थप्रतिपत्तिः ।' 'यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्' इति । यासां गिरां त्रिभिर्न्यायैरुदात्तानुदात्तस्वरितैः स्वरैरुदीरणमुच्चारणम् । यासां कर्म, प्रतिपाद्यमित्यर्थः । यज्ञो ज्योतिष्टोमादिः, न तु चैत्यवन्दनादिरिति भावः । फलं स्वर्गः । कर्मद्वारेति शेषः । कर्मस्वर्गौ ब्रह्मापवर्गयोरप्युपलक्षणे । त्वं तासां गिराम् । वेदानामित्यर्थः । प्रभवत्यस्मादिति प्रभवः कारणम् । प्रणेता स्मर्ता वा मतभेदेन ।

अन्वय—यासाम् उद्घातः प्रणवः, (यासां) त्रिभिः न्यायैः उदीरणम्, (यासां) कर्म यज्ञः, फलं स्वर्गः, त्वं तासां गिरां प्रभवः असि ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शब्दार्थ—यासाम् = जिनका । उद्घातः = आरम्भ । प्रणवः = ओम्-कार । त्रिभिः = तीन । न्यायैः = (उदात्त, अनुदात्त और स्वरित इन) स्वरों से । उदीर्णम् = उच्चारण (हुआ करता है) । तासाम् = उन । गिराम् = वाणियों का । प्रभवः = उत्पत्ति स्थान ।

संस्कृत टीका—यासाम् = गिराम् वाचाम्, उद्घातः = उप्रक्रमः, प्रणवः = ओंकारः, (यासां वाचाम्), त्रिभिः = त्रिसंख्याकैः, न्यायैः = उदात्तानुदात्तस्वरित-स्वरैः, उदीर्णम् = उच्चारणम्, (यासां = वाचाम्) कर्म = अभिधेयम्, यज्ञः = ज्योतिष्टोमादि यागः, फलं = यागजन्यं परिणामं, स्वर्गः = दिव्यलोकः सुखविशेषः वा, त्वं = भवान्, तासाम् = तथोक्तानाम् वाणीनां, प्रभवः = उत्पत्तिकारणमसि ।

व्याकरण—यज्ञः–यज् + नङ्, प्र० एक० । प्रभवः–प्र + भू + अप्, प्र० एक० ।

हिन्दी अनुवाद—जो वाणी ओंकार से प्रारम्भ होती है, (जो उदात्त, अनुदात्त और स्वरित-इन) तीन स्वरों से उच्चरित होती है, जिस (वाणी) का कर्म यज्ञ है, फल स्वर्ग है, आप उस (वेद) वाणी के उत्पत्ति स्थल हैं ।

विशेष—(१) प्रणव–ओंकार–यह त्रिगुणात्मक ब्रह्म का पर्याय माना जाता है । वेदमन्त्रों के पाठ के प्रारम्भ तथा अन्त में प्रणव का उच्चारण किया जाता है । (२) न्यायैः–'नीयन्ते एभिः अर्थविशेषाः, इति न्यायाः स्वराः' । वेदमन्त्रों का उच्चारण उदात्तादि स्वरों से किया जाता है ।।१२।।

त्वामामनन्ति प्रकृतिं पुरुषार्थप्रवर्तिनीम् ।
तद्दर्शिनमुदासीनं त्वामेव पुरुषं विदुः ।।१३।।

सञ्जीविनी—साङ्ख्यमतेन स्तुवन्ति—त्वामिति । हे भगवन् ! त्वां पुरुषस्यार्थो भोगापवर्गरूपस्तदर्थं प्रवर्तत इति पुरुषार्थप्रवर्तिनीं तां प्रकृतिं त्रैगुण्यात्मकं मूलकारणम् । "प्रकृतिः पञ्चभूतेषु प्रधानं मूलकारणम्" इति यादवः । आमनन्ति कथयन्ति । 'म्ना अभ्यासे' इति धातोर्लट् । "पाघ्राध्मास्थाम्ना" इत्यादिना मनादेशः । प्रकृतिपुरुषभेदाग्रहणात् प्रकृतिपुरुषाभेदव्यपदेशः । त्वामेव तां प्रकृतिं साक्षित्वेन पश्यतीति तद्दर्शिनम् उदासीनं कूटस्थं पुरुषं विदुर्विदन्ति । "विदो लटो वा" इति झेर्जुसादेशः । 'अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम्' इति श्रुतिरत्र प्रमाणम् ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्वय—त्वां पुरुषार्थप्रवर्तिनीं प्रकृतिम् आमनन्ति । त्वाम् एव तद्दर्शिनम् उदासीनं पुरुषं विदुः ।

शब्दार्थ—त्वाम् = आपको । पुरुषार्थप्रवर्तिनीम् = पुरुषार्थ में प्रवृत्त करने वाली । प्रकृतिम् = मूल कारण । आमनन्ति = कहते हैं । त्वामेव = आप को ही । तद्दर्शिनम् = उस (मूल प्रकृति) का साक्षात् करने वाला । उदासीनम् = तटस्थ । विदुः = कहते हैं ।

संस्कृत टीका—त्वाम् = भवन्तम्, पुरुषार्थप्रवर्तिनीम् = भोगापवर्ग-साधिकाम्, प्रकृतिं = मूलकारणम्, आमनन्ति = कथयन्ति, तद्दर्शिनम् = प्रकृति-साक्षात्कर्तारम्, उदासीनं = तटस्थम्; पुरुषं = पुरुषतत्त्वम्, विदुः = मन्यन्ते ।

समास—पुरुषस्य अर्थः पुरुषार्थः (ष० तत्पु०), पुरुषार्थाय प्रवर्तते ताम् पुरुषार्थप्रवर्तिनीम् (उपपदतत्पु०) । तां पश्यतीति तद्दर्शी, तम् तद्दर्शिनम् (उपपदतत्पु०) ।

व्याकरण—आमनन्ति–आ + मन् + लट्, प्र० पु० बहु० । तद्दर्शिनम्—तद् + दृश् + णिनि, द्वि० एक० । विदुः—विद् + लट्, प्र० पु० बहु० ।

हिन्दी अनुवाद—आपको विद्वज्जन पुरुषार्थ (भोग और मोक्ष) में प्रवृत्त करने वाली मूल प्रकृति कहते हैं और आपको ही उस मूल प्रकृति का साक्षात्कार करने वाला तटस्थ पुरुष भी कहते हैं ।

विशेष—सांख्य दर्शन में २५ तत्त्वों = मूल प्रकृति, पुरुष, महत् तत्त्व, अहंकार, मन, पञ्च महाभूत, पञ्च तन्मात्राएँ, पञ्च ज्ञानेन्द्रियों एवं पञ्च कर्मेन्द्रियों का वर्णन किया गया है । २४ तत्त्वों के मूल में रहने वाली प्रकृति को मूल प्रकृति कहा गया है । सांख्य में पुरुष निष्क्रिय या तटस्थ कहा गया है, क्योंकि प्रकृति ही सम्पूर्ण दृश्यमान जगत् की कारयित्री है ॥१३॥

त्वं पितॄणामपि पिता देवानामपि देवता ।
परतोऽपि परश्चासि विधाता वेधसामपि ॥१४॥

सञ्जीविनी—त्वमिति । हे भगवन् ! त्वं पितॄणामग्निष्वात्तादीनामपि पिता, तेषामपि तर्पणीय इत्यर्थः । देवानामिन्द्रादीनामपि देवता, तेषामपि यजनीय इत्यर्थः । परतोऽपि परश्चासि, सर्वोत्तरोऽसीत्यर्थः । 'इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः । मनसश्च परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः । महतः

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः । पुरुषान्न परं किञ्चित्सा काष्ठा सा परा गतिः ॥' इति सर्वोत्तरत्वाभिधानात् । वेधसां दक्षादीनामपि विधाता स्रष्टाऽसि ।

अन्वय—त्वं पितॄणामपि पिता, देवानामपि देवता, परतः अपि परः च असि, वेधसामपि विधाता असि ।

शब्दार्थ—त्वम्=तुम । पितॄणाम्=पितृगणों के । अपि=भी । पिता=पिता हो । देवानामपि=देवताओं के भी । देवता=देवता । परतोऽपि=उत्कृष्ट से भी । परः=उत्कृष्ट । असि=हो । वेधसाम्=प्रजापतियों के । अपि=भी । विधाता=स्रष्टा । असि=हो ।

संस्कृत टीका—त्वं=भवान्, पितॄणाम्=पितृगणानाम् अपि, पिता=जनकः, देवानामपि=अमराणामपि, देवः=उपास्यः, असि । परतोऽपि=उत्तमेभ्योऽपि, परः=उत्तमः, वेधसामपि=प्रजापतित्वेन प्रसिद्धानां दक्षादीनामपि, विधाता=रचयिता, असि ।

व्याकरण—देवता–देव+तल्+टाप्, प्र० एक० । विधाता–वि+धा+तृच्, प्र० एक० । परतः–पर+तसिल् ।

हिन्दी अनुवाद—आप पितृजनों के भी पिता हैं, देवों के भी देव हैं, उत्कृष्टों से भी उत्कृष्ट हैं, और जगत् के निर्माताओं (प्रजापतियों) के भी निर्माता हैं ।

विशेष—(१) एक देवयोनिविशेष पितर कहलाते हैं । मनुस्मृति ३–१९४ के अनुसार पितृगण प्रजापति के पुत्र हैं एवं वंश प्रवर्तक हैं । (२) पुराणों के अनुसार प्रजापति ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं, ब्रह्मा जब समाधिस्थ थे, तब उनके विभिन्न अङ्गों—प्रजापतियों की उत्पत्ति हुई थी । ब्रह्मा की आज्ञा से इन प्रजापतियों ने सृष्टि-रचना की । प्रजापतियों की संख्या १० बतलाई गयी है—(१) मरीचि, (२) अत्रि, (३) अङ्गिरस, (४) पुलस्त्य, (५) पुलह, (६) क्रतु, (७) भृगु, (८) वशिष्ठ, (९) दक्ष और (१०) नारद ॥१४॥

त्वमेव हव्यं होता च भोज्यं भोक्ता च शाश्वतः ।
वेद्यं च वेदिता चासि ध्याता ध्येयं च यत्परम् ॥१५॥

सञ्जीविनी—त्वमेवेति । शश्वत्सिद्धः शाश्वतः, शैषिकोऽण्प्रत्ययः । यद्यपि "कालाट्ठञ्" इति ठञपवादः, अत एव सूत्रकारस्यापि प्रयोगः—'येषां च विरोधः

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शाश्वतिकः ।' इति । तथापि प्रयोगवशात्साधुरिति वामन इत्याह । 'शाश्वतमिति प्रयुक्तेः' इति । शाश्वतस्त्वमेव । हूयत इति हव्यं हविराज्यादिकम् । जुहोतीति होता । यजमानश्चासि । भोज्यमभ्यवहार्यमन्नम् । 'भोज्य भक्ष्ये' इति निपातनात्-कुत्वाभावः । भोक्ताऽन्नादश्चासि । वेद्यं साक्षात्कार्यं वस्तु, वेदिता साक्षात्कर्ता चासि । ध्याता स्मर्ता च । यत्परं वस्तु ध्येयं तच्चासि । साक्षात्कारसाधनभूत-प्रत्ययविशेषप्रवाहो ध्यानम् ।

अन्वय—शाश्वतः, त्वम् एव हव्यं होता च असि, भोज्यं भोक्ता च (असि), वेद्यं च वेदिता च असि । ध्याता यत् च परं ध्येयं (च असि) ।

शब्दार्थ—शाश्वतः = नित्य । त्वमेव = तुम ही । हव्यम् = हवन की सामग्री । होता = हवनकर्ता । असि = हो । भोज्यम् = खाने योग्य, अन्नादि । भोक्ता = भोग करने वाला । वेद्यम् = जानने योग्य वस्तु । वेदिता = जानने वाला । ध्याता = ध्यान करने वाला । ध्येय = ध्यान का विषय ।

संस्कृत टीका—शाश्वतः = नित्यः, त्वमेव = भवान्, एव, नान्य इत्यर्थः । हव्यम् = होमसाधनम् घृतादिकं, होता = हवनकर्ता, भोज्यम् = भक्ष्यम्, अन्ना-दिकं, भोक्ता = भक्षकः, वेद्यम् = ज्ञेयं, साक्षात्करणीयं तत्त्वम्, वेदिता = साक्षा-त्कर्ता, ज्ञाता च असि, ध्याता = चिन्तयिता, यच्च परं = श्रेष्ठं तत्त्वम्, ध्येयम् = चिन्तनीयं, तदपि त्वमेवासि ।

व्याकरण—शाश्वतः—शश्वत + अण्, प्र० एक० । हव्यम्—हु + यत्, प्र० एक० । होता—हु + तृच्, प्र० एक० । भोज्यम्—भुज् + ण्यत्, निपातन से ज् को ग् नहीं हुआ । भोक्ता – भुज् + तृच्, प्र० एक० । वेद्यम् – विद् + यत, प्र० एक० ! वेदिता – विद + तृ, प्र० एक० । ध्याता – ध्यै + तृच्, प्र० एक० । ध्येयम् – ध्यै + यत् ।

हिन्दी अनुवाद—आप ही (होम साधनभूत) हविर्द्रव्य हैं और आप ही (होम करने वाले) यजमान हैं, आप ही भक्ष्य (अर्थात् खाया जाने वाला) अन्न हैं और आप ही शाश्वत भोक्ता हैं । आप ही ज्ञेय वस्तु हैं और आप ही ज्ञाता हैं । आप ही ध्यान करने वाले हैं और आप ही उत्कृष्ट ध्यान का विषय (ध्यान योग्य वस्तु) हैं ।।१५।।

इति तेभ्यः स्तुतीः श्रुत्वा यथार्था हृदयङ्गमाः ।
प्रसादाभिमुखो वेधाः प्रत्युवाच दिवौकसः ।।१६।।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सञ्जीविनी—इतीति। वेधा ब्रह्मेति तेभ्यो देवेभ्यः। "आख्यातोपयोगे" इत्यपादानत्वात्पञ्चमी। यथार्थाः सत्या अत एव हृदयं गच्छन्तीति हृदयङ्गमा मनोहराः। खच्प्रकरणे "गमेः सुप्युपसंख्यानम्।" इति खच्प्रत्ययः। "अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्" इति मुमागमः। स्तुतीः स्तोत्राणि श्रुत्वा प्रसादाभिमुखोऽनुग्रहप्रवणः सन्। दिवौकसो देवान् प्रत्युवाच।

अन्वय—वेधाः इति तेभ्यः यथार्थाः हृदयङ्गमाः स्तुतीः श्रुत्वा प्रसादाभिमुखः दिवौकसः प्रत्युवाच।

शब्दार्थ—वेधाः=ब्रह्मा। इति=इस प्रकार। तेभ्यः=उन (देवताओं) से। यथार्थाः=वास्तविक। हृदयङ्गमाः=मन को अच्छी लगने वाली, मनोहर। स्तुतीः=स्तुतियों को। श्रुत्वा=सुनकर। प्रसादाभिमुखः=वर प्रदान करने की इच्छा से। दिवौकसः=देवताओं से। प्रत्युवाच=बोले।

संस्कृत टीका—वेधाः=ब्रह्मा, इति=उक्तप्रकारेण कृतं, तेभ्यः=देवेभ्यः, यथार्थाः=अर्थानुरूपाः, हृदयङ्गमाः=मनोरमाः, स्तुतीः=प्रशस्तिवचनानि, श्रुत्वा=निशम्य, प्रसादाभिमुखः=अनुग्रहोन्मुखः सन्, दिवौकसः=देवान्, प्रत्युवाच=प्रत्याह।

समास—हृदयं गच्छन्तीति ते हृदयङ्गमाः (उपपदतत्पु०)। प्रसादे अभिमुखः प्रसादाभिमुखः (सप्तमी तत्पु०)।

व्याकरण—वेधाः–वेधस्, प्र० एक०। हृदयङ्गमाः–हृदय+गम्+खच्, द्वि० बहु०। दिवौकसः–दिव+ओकस, द्वि० बहु०। प्रत्युवाच–प्रति+ब्रू+लिट्, प्र० पु० एक०।

हिन्दी अनुवाद—इस प्रकार (पूर्वोक्त प्रकार से) देवताओं द्वारा की गई यथार्थ से युक्त और हृदयग्राही स्तुतियों को सुनकर ब्रह्मा वर प्रदान करने की इच्छा से देवताओं से बोले ॥१६॥

पुराणस्य कवेस्तस्य चतुर्मुखसमीरिता।
प्रवृत्तिरासीच्छब्दानां चरितार्था चतुष्टयी ॥१७॥

सञ्जीविनी—अथ कविराह—पुराणस्येति। द्रव्यगुणक्रियाजातिभेदेन चत्वारोऽवयवा यस्या इति चतुष्टयी चतुर्विधा 'सङ्ख्याया अवयवे तयप्' इति तयप्। "टिड्ढाणञ् द्वयसच्—"इत्यादिना ङीप्। शब्दानां प्रवृत्तिर्वैखरीप्रमुखा वाग्वृत्तिः। उक्तञ्च—

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'वैखरी शब्दनिष्पत्तिर्मध्यमा श्रुतिगोचरा ।
द्योतितार्था च पश्यन्ती सूक्ष्मा वागनपायिनी ।।' इति ।

पुराणस्य पुरातनस्य । पृषोदरादित्वात्साधुः । कवेः कवयितुस्तस्य ब्रह्मणश्चतुर्भिर्मुखैः समीरिता सती । "तद्धितार्थ-" इत्यादिनोत्तरपदसमासः । समाहारे चतुर्मुखीति स्यात् । चरितार्थाऽन्वर्थाऽऽसीत् । चतुर्मुखोच्चारणाच्चातुर्विध्यं सफलमासीदित्यर्थः ।

अन्वय—चतुष्टयी शब्दानां प्रवृत्तिः पुराणस्य कवेः तस्य चतुर्मुखसमीरिता चरितार्था आसीत् ।

शब्दार्थ—चतुष्टयी = चार प्रकार की । शब्दानाम् = शब्दों की, प्रवृत्तिः = प्रयोग । पुराणस्य = पुरा (कालीन) । कवेः = कवि । तस्य = उस (ब्रह्मा) की । चतुर्मुखसमीरिताः = चारों मुखों से निकली हुई । चरितार्था = सफल । आसीत् = हो गया ।

संस्कृत टीका—चतुष्टयी = द्रव्यगुणक्रियाजातिभेदेन चतुर्विधा, शब्दानाम् = पदानां, प्रवृत्तिः = प्रयोगः, पुराणस्य = चिरन्तनस्य, कवेः = विदुषः, तस्य = ब्रह्मणः, चतुर्मुखसमीरिताः = चतुर्मखोच्चारिताः, चरितार्था = अन्वर्था, सफला, आसीत = जाता ।

समास—चत्वारः अवयवाः यस्याः सा चतुष्टयी (वहु०) । चतुर्णां मुखानां समाहारः चतुर्मुखम (द्विगु०) चतुर्मुखेन समीरिता चतुर्मुखसमीरिता (तृ०तत्पु०), चरितः अर्थाः यस्याः सा चरितार्था (वहु०) ।

व्याकरण—चतुष्टयी—चतुर् + तयप् + ङीप् । प्रवृत्तिः—प्र + वृत् + क्तिन्, प्र० एक० । समीरिता—सम + ईर् + क्त + टाप्, प्र० एक० ।

हिन्दी अनुवाद—उन पुरा कवि ब्रह्मा के चतुर्मुख से उच्चरित चार प्रकार के (अर्थात् द्रव्य, गुण, जाति और क्रिया के प्रभेद से) शब्दों का प्रयोग चरितार्थ हो गया ।

विशेष—महाभाष्यकार पतंजलि के अनुसार शब्दों की चतुर्विध प्रवृत्ति होती है । मल्लिनाथ के अनुसार—"शब्दानां प्रवृत्तिः" का अर्थ 'वाग्वृत्तिः' है । इस सन्दर्भ में उन्होंने निम्न श्लोक उल्लेख किया है—

'वैखरी शब्दनिष्पत्तिर्मध्यमा श्रुतिगोचरा ।
द्योतितार्था च पश्यन्ती सूक्ष्मा वागनपायिनी ।।१७।।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वागतं स्वानधीकारान् प्रभावैरवलम्ब्य वः ।
युगपद् युगबाहुभ्यः प्राप्तेभ्यः प्राज्यविक्रमाः ॥१८॥

सञ्जीविनी—स्वागतमिति । हे प्राज्यविक्रमाः प्रभूतपराक्रमा देवाः ! "प्राज्यं भूरि प्रभूतं च" इति यादवः । स्वान् स्वकीयानधीकारान्नियोगान् । "उपसर्गस्य घञि—"इति वा दीर्घः । प्रभावैः सामर्थ्यैः । अवलम्ब्यास्थाय यथाधिकारं स्थित्वाऽपीत्यर्थः । युगपत्समकालं प्राप्तेभ्यः युगपत्प्राप्त्या महत् कार्यमनुमीयत इति भावः । युगबाहुभ्यः, दीर्घबाहुभ्यः, इत्यर्थः । आजानुबाहुत्वं भाग्यलक्षणम् । वो युष्मभ्यम् । "बहुवचनस्य वस्नसौ" इति वसादेशः । 'कर्मणा यमभिप्रैति' इत्यत्र कर्मपदेन क्रियाग्रहणात् सम्प्रदानत्वम् । स्वागतं शोभनमागमनम् । काकुरत्रानुसन्धेया ।

अन्वय—प्राज्यविक्रमाः ! स्वान् अधीकारान् प्रभावैः अवलम्ब्य युगपत्-प्राप्तेभ्यः युगबाहुभ्यः वः स्वागतम् ।

शब्दार्थ—प्राज्यविक्रमाः=अत्यन्त पराक्रमशील । स्वान्=अपने । अधीकारान्=अधिकारों के । प्रभावैः=प्रभाव से । अवलम्ब्य=अवलम्बन करके । युगपत्=एक ही समय । प्राप्तेभ्यः=समागत, आए हुए । युगबाहुभ्यः =लम्बी भुजाओं वाले । वः=आप सबका । स्वागतम्=आगमन शुभ हो ।

संस्कृत टीका—प्राज्यविक्रमाः=प्रभूतपराक्रमशीलाः, स्वान्=स्वकीयान्, अधीकारान्=कर्तव्यान्, प्रभावैः=सामर्थ्यैः, अवलम्ब्य=समाधृत्य, युगपत्=समकालम्, प्राप्तेभ्यः=आगतेभ्यः, युगबाहुभ्यः=दीर्घभुजेभ्यः, वः=युष्मभ्यम्, स्वागतम्=शुभागमनं भवतु, इति ।

समास—प्राज्यः विक्रमः येषाम् ते प्राज्यविक्रमाः (बहु०) । युगौ इव बाहु येषां ते युगबाहवः, तेभ्यः युगबाहुभ्यः (बहु०) ।

व्याकरण—अवलम्ब्य—अव+लम्ब्+क्त्वा (=ल्यप्) । वः—युष्मद् च० बहु० ।

हिन्दी अनुवाद—अत्यन्त पराक्रम से युक्त देवगण । अपने-अपने अधिकारों को अपने प्रभाव से (सामर्थ्यानुसार) धारण करके एक साथ समागत, लम्बी भुजाओं वाले आप सबका आगमन शुभ हो ॥१८॥

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किमिदं द्युतिमात्मीयां न बिभ्रति यथा पुरा।
हिमक्लिष्टप्रकाशानि ज्योतींषीव मुखानि वः ॥१९॥

सञ्जीविनी—किमिति। 'वत्साः' इत्युत्तरश्लोकीयसम्बोधनमत्राप्यनुषञ्जनीयम्। हे वत्साः पुत्रकाः! हिमेन नीहारेण क्लिष्टप्रकाशानि मन्दप्रभाणि ज्योतींषि नक्षत्राणीव "दीप्तिताराहुतांशेषु ज्योतिः" इति शाश्वतः। वो युष्माकं मुखानि पुरा यथा पूर्वमिवात्मीया द्युतिं न विभ्रति। इदं किम्? किमिदमित्यनेन वाक्यार्थः परामृश्यते।

अन्वय—हिमक्लिष्टप्रकाशानि ज्योतींषि इव वः मुखानि पुरा यथा आत्मीयां द्युतिं न विभ्रति। इदं किम्?

शब्दार्थ—हिमक्लिष्टप्रकाशानि = हिमपात से मलिन प्रकाश। ज्योतींषि = नक्षत्रों। इव = के तुल्य। वः = आपके। मुखानि = मुख। पुरा यथा = पूर्व काल की तरह। आत्मीयाम् = नैसर्गिक। द्युतिम् = प्रभा को। न विभ्रति = धारण नहीं कर रहे हैं।

संस्कृत टीका—हिमक्लिष्टप्रकाशानि = तुषारेण कलुषितानि न्यूनीकृतानि प्रभाणि, ज्योतींपि = नक्षत्राणि, इव, वः = युष्माकम्, मुखानि = वदनानि, पुरा = यथा प्रागिव, आत्मीयाम् = स्वकीयाम्, द्युतिम् = कान्तिम्, न बिभ्रति = न धारयन्ति। इदं किम्? = किं कारणकमेतत्?

समास—हिमेन क्लिष्टः प्रकाशः येषां तानि हिमक्लिष्टानि (बहु०)।

व्याकरण—क्लिष्ट—क्लिश् + क्त। आत्मीयाम् + आत्मन् + छ (= ईय्) + टाप्, द्वि० एक०। बिभ्रति—भृ + लट्, प्र०पु० बहु०।

हिन्दी अनुवाद—हिम के कारण क्षीण प्रकाश वाले नक्षत्रों की तरह आप लोगों के मलिन मुख पहले की तरह स्वभावजन्य प्रभा को अथवा नैसर्गिक प्रभा को धारण नहीं कर रहे हैं। इस (मन्दता) का क्या कारण है?

विशेष—शीत ऋतु में जब वायुमण्डल घने कुहरे से आच्छादित होता है तब सूर्य का प्रकाश अवरुद्ध हो जाता है। जब कुहरा झीना होता है तब सूर्य दृष्टिगोचर तो होता है किंतु उसका प्रकाश क्षीण होता है। यही दशा अन्य नक्षत्रों की भी होती है। उसी प्रकार तारकासुर से पीड़ित स्वाभाविक

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कान्ति वाले देवताओं के मुखमण्डल की कान्ति भी मनोव्यथा के आधिक्य से क्षीण हो गई है ॥१९॥

प्रशमादर्चिषामेतदनुद्गीर्णसुरायुधम् ।
वृत्रस्य हन्तुः कुलिशं कुण्ठिताश्रीव लक्ष्यते ॥२०॥

सञ्जीविनी—उक्तमेव प्रपञ्चयति सप्तभिः श्लोकैः–प्रशमादिति। अर्चिषां तेजसां प्रशमान्निर्वाणाद् अनुद्गीर्णसुरायुधम्। अनुदितप्रभमित्यर्थः। एतद्वृत्रस्य हन्तुरिन्द्रस्य कुलिशं वज्रम्। कुण्ठिता आश्रयो यस्य तत्कुण्ठिताश्रि, कुण्ठितकोटीव दृश्यते।

अन्वय—अर्चिषां प्रशमाद् अनुद्गीर्णसुरायुधम् एतद् वृत्रस्य हन्तुः कुलिशं कुण्ठिताश्रि इव लक्ष्यते।

शब्दार्थ—अर्चिषाम्=तेज के। प्रशमात्=शान्त हो जाने से। अनुद्गीर्ण=अप्रकाशित। सुरायुधम्=इन्द्र धनुष की तरह। एतद्=यह। वृत्रस्य हन्तुः=वृत्रहन्ता (इन्द्र) का। कुलिशम्=वज्र। कुण्ठिताश्रि=धार से युक्त। लक्ष्यते=लक्षित हो रहा है।

संस्कृत टीका—अर्चिषाम्=तेजसाम्, प्रशमात्=शमनात्, अनुद्गीर्णसुरायुधम्=अप्रकाशितेन्द्रधनुषम्, एतद्=इदम्, वृत्रस्य=वृत्रासुरस्य, हन्तुः=विनाशयितुः, इन्द्रस्य, कुलिशम्=वज्रम्, कुण्ठिताश्रि=कुण्ठितधारम्, इव=यथा, लक्ष्यते=प्रतीयते।

समास—न उद्गीर्णम् अनुद्गीर्णम् (नञ् तत्पु०), सुराणाम् आयुधम् सुरायुधम् (ष० तत्पु०), अनुद्गीर्णं सुरायुधम् यस्मात् तत् अनुद्गीर्णसुरायुधम् (बहु०)। कुण्ठिताः अश्रयः यस्य तत् कुण्ठिताश्रि (बहु०)।

व्याकरण—अनुद्गीर्ण—न+उद्+गॄ+क्त । हन्तुः—हन्तृ+ष० एक०। लक्ष्यते—लक्ष् (कर्मणि) य+लट्, प्र० पु० एक०।

अलङ्कार—उत्प्रेक्षा।

हिन्दी अनुवाद—वृत्रासुर को मारने वाले इन्द्र का यह वज्र (अपनी) तेज शान्ति के कारण अप्रकाशित इन्द्र धनुष की तरह और साथ ही कुण्ठित धार वाला प्रतीत होता है।

विशेष—अभिप्राय यह है कि तारकासुर वृत्रासुर से बढ़कर दुर्घर्ष है क्योंकि वृत्र का वध करने वाला इन्द्र का आयुध वज्र भी तारकासुर पर प्रभावी न हो सका ॥२०॥

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किं चायमरिदुर्वारः पाणौ पाशः प्रचेतसः।
मन्त्रेण हतवीर्यस्य फणिनो दैन्यमाश्रितः ॥२१॥

सञ्जीविनी—किञ्चेति। किञ्च, अयमरिदुर्वारो रिपुदुष्प्रधर्षः प्रचेतसो वरुणस्य। "प्रचेता वरुणः पाशी" इत्यमरः। पाणौ रज्जुरायुधविशेषः। मन्त्रेण गारुडेन हतवीर्यस्य प्रतिवद्धाशक्तेः फणिनः सर्पस्य दैन्यं शोच्यत्वम् आश्रितः। अत्र फणिनिष्ठदैन्यस्य पाशेनासम्भवाद्दैन्यमिव दैन्यमिति कल्पनादसम्भवद्वस्तु-सम्वन्धो निदर्शनालङ्कारः।

अन्वय—किञ्च अयम् अरिदुर्वारः प्रचेतसः पाणौ पाशः मन्त्रेण हतीवीर्यस्य फणिनः दैन्यम् आश्रितः।

शब्दार्थ—किञ्च=साथ ही। अयम्=यह। अरिदुर्वारः=शत्रुओं के लिए असहनशील। प्रचेतसः=वरुण के। पाणौ=हाथ में स्थित, करस्थ। पाशः=फन्दा। मन्त्रेण=मन्त्र के द्वारा। हतवीर्यस्य=विनष्ट शक्तिवाले। फणिनः=सर्प की। दैन्यम्=दीन भाव को। आश्रितः=उपलब्ध हुआ है।

संस्कृत टीका—किञ्च=अपि च, अयम्=एप पुरावर्ती, अरिदुर्वारः=रिपुदुष्प्रधर्षः, पूर्वं शत्रुभिः सोढुमशक्यः, प्रचेतसः=वरुणस्य, पाणौ पाशः=रज्जुरायुधविशेषः, मन्त्रेण=मन्त्रविशेषेण, हतवीर्यस्य=नष्टसामर्थ्यस्य, फणिनः=सर्पस्य, दैन्यम्=दीनभावम्, शोच्यावस्थाम्, आश्रितः=प्राप्तः।

समास—अरिभिः दुर्वारः अरिदुर्वारः (तृ० तत्पु०)। हतं वीर्यं यस्य स हतवीर्यः तस्य हतवीर्यस्य (बहु०)।

व्याकरण—दुर्वारः—दुर्+वृ+णि+खल्, प्र०एक०। दैन्यम्-दीन+ष्यञ्। आश्रितः—आ+श्रि+क्त, प्र० एक०।

अलङ्कार—निदर्शना।

हिन्दी अनुवाद—शत्रुओं के लिए दुर्वार, वरुण के हाथ में वर्तमान यह पाश मन्त्र के द्वारा हतवीर्य सर्प के तुल्य दीन दिखाई पड़ता है।

विशेष—(१) वरुण का अस्त्र पाश है जिसमें अपने शत्रुओं को फँसा कर मार डालता है। (२) मन्त्रों में प्रभावी शक्ति होती है। विशेष मन्त्रों के प्रयोग से सर्प की विषरूपी शक्ति को क्षीण कर दिया जाता है, जिससे उसकी दशा दयनीय हो जाती है। उसी प्रकार क्षीण तेजवाला वरुण का पाश भी तारकासुर का कुछ न बिगाड़ पाने के कारण दीन हो गया है ॥२१॥

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कुबेरस्य मनःशल्यं शंसतीव पराभवम् ।
अपविद्धगदो बाहुर्भग्नशाख इव द्रुमः ॥२२॥

सञ्जीविनी—कुबेरस्येति । अपविद्धा त्यक्ता गदा येन सोऽपविद्धगदः । अत एव भग्नशाखो द्रुम इव स्थितः कुबेरस्य बाहुर्मनःशल्यम् दुःखहेतुत्वान्मनसः शल्यप्रायत्वमित्यर्थः । पराभवं शत्रुकृतमिति शेषः । शंसतीव कथयतीव, लक्षणयाऽनुमापयतीत्यर्थः । बाहौ मुख्यकथनस्यासम्भवादिवशब्दोऽप्यत एव ।

अन्वय—अपविद्धगदः भग्नशाखः द्रुमः इव (स्थितः) कुबेरस्य बाहुः मनःशल्यं पराभवं शंसति इव ।

शब्दार्थ—अपविद्धगदः=गदा रहित । भग्नशाखः=शाखाहीन । द्रुमः= वृक्ष । मनःशल्यम्=मानस वेदनारूपी । पराभवम्=पराभव को । शंसति= सूचित कर रहा है ।

संस्कृत टीका—अपविद्धगदः=त्यक्तगदायुधः, भग्नशाखः=शाखाविहीनः, द्रुमः=वृक्षः, इव=यथा, कुबेरस्य=यक्षराजस्य, बाहुः=भुजः, मनःशल्यम्= मर्मकण्टकम्, इव पराभवम्=शत्रुकृताभिभवम्, शंसतीव=सूचयतीव ।

समास—अपविद्धा गदा येन सः अपविद्धगदः (बहु०) । भग्ना शाखा येन सः भग्नशाखः (बहु०) । मनसः शल्यम् मनःशल्यम् (ष० तत्पु०) ।

व्याकरण—अपविद्ध—अप+व्यध्+क्त ।

अलङ्कार—'द्रुम इव' में उपमा, 'मनःशल्यम्' में रूपक और 'शंसतीव' में उत्प्रेक्षा ।

हिन्दी अनुवाद—गदारहित कुबेर की यह भुजा शाखा से हीन वृक्ष की तरह मानस वेदना रूपी (शत्रु द्वारा किये गये) अपमान को सूचित कर रहा है ।

विशेष—कुबेर का अस्त्र गदा है । जब उनकी गदा तारकासुर पर प्रभावी न हो सकी तो उन्होंने गदा धारण करना छोड़ दिया । अतः गदाविहीन कुबेर की भुजा ऐसी प्रतीत होती है मानो टूटी हुई शाखा वाला वृक्ष हो । गदाविहीन कुबेर की भुजा शत्रुकृत अपमान को सूचित कर रही है । शत्रु द्वारा किया अपमान हृदय में चुभे हुए शल्य की भाँति पीड़ादायक होता है ॥२२॥

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यमोऽपि विलिखन् भूमिं दण्डेनास्तमितत्विषा ।
कुरुतेऽस्मिन्नमोघेऽपि निर्वाणालातलाघवम् ।। २३ ।।

सञ्जीविनी—यम इति । अस्तं नाशमिताः प्राप्ताः । अस्तमिति मकारान्तमव्ययम् । तस्य "द्वितीयाश्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः" इति समासः । अस्तमिता त्विषो यस्य तेन निस्तेजस्केन दण्डेन यमोऽपि भूमिं विलिखन्नमोघेऽपि । प्रागिति भावः । अस्मिन् दण्डे निर्वाणालातस्य शान्तोल्मुकस्य । अलातं नाम भूलेखनशलाका, तस्य यल्लाघवं क्लैव्यं तत्कुरुते । 'अलातमुल्मुकं ज्ञेयम्' इति हलायुधः । 'निर्वाणोऽवाते' इति निपातनान्निष्ठानत्वम् । अत्रापि लाघवमिव लाघवमिति कल्पनान्निदर्शनालङ्कारः ।

अन्वय—अस्तमितत्विषा दण्डेन यमः अपि भूमिं विलिखन् अमोघेऽपि अस्मिन् निर्वाणालातलाघवं कुरुते ।

शब्दार्थ—अस्तमितत्विषा = तेजहीन । दण्डेन = दण्ड के द्वारा । यमः = यमराज । अपि = भी । भूमिम् = पृथ्वी को । विलिखन् = कुरेदते हुए । अमोघे = व्यर्थ न होने वाले, अस्मिन् = इस (दण्ड) में । निर्वाण = बुझे हुए अर्थात् शान्त । अलात = आग से जला हुआ काष्ठ । लाघवम् = व्यर्थता को । कुरुते = सूचित कर रहा है ।

संस्कृत टीका—अस्तमितत्विषा = निस्तेजस्केन, दण्डेन = निजायुधेन, यमोऽपि = धर्मराजोऽपि, भूमिम् = पृथ्वीम्, विलिखन् = उत्किरन्, अमोघेऽपि = अव्यर्थेऽपि, अस्मिन् = दण्डे, निर्वाणालातलाघवम् = प्रशान्तोल्मुकक्लैव्यम्, कुरुते = आविष्करोति ।

समास—अस्तम् इताः इति अस्तमिताः (द्वि० तत्पु०), अस्तमिताः त्विषः यस्य सः तेन अस्तमितत्विषा (बहु०) न मोघः अमोघः (नञ् तत्पु०) तस्मिन् अमोघे । निर्वाणं च तत् अलातम् निर्वाणालातम् (कर्म०), निर्वाणालातस्य लाघवम् निर्वाणालातलाघवम् (ष० तत्पु०) ।

व्याकरण—अस्तमितः—अस्तम् इतः, अस्तम्—यह मकारान्त अव्यय है । विलिखन्—वि + लिख् + शतृ, प्र० एक० । लाघवम्—लघु + अण् ।

अलङ्कार—निदर्शना ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection: Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हिन्दी अनुवाद—तेजहीन दण्ड से पृथ्वी को कुरेदते हुए यमराज भी पूर्वकाल में कभी निष्फल न होने वाले (अपने) इस दण्ड में (इस समय) आग से जले हुए काष्ठ की (तरह अपनी) व्यर्थता को प्रकट कर रहे हैं।

विशेष—अभिप्राय यह है कि यम का आयुध दण्ड भी तारकासुर के प्रभाव से प्रभावहीन हो गया। अत्यन्त ग्लानि के कारण यमराज अपने दण्ड से पृथ्वी कुरेद रहे हैं ॥ २३ ॥

अमी च कथमादित्याः प्रतापक्षतिशीतलाः।
चित्रन्यस्ता इव गताः प्रकामालोकनीयताम् ॥ २४ ॥

सञ्जीविनी—अमी इति। प्रतापक्षत्या तेजसां क्षयेण शीतला अमी आदित्याश्च। द्वादशेति शेषः। कथम्, केन हेतुनेत्यर्थः। चित्रन्यस्ताश्चित्रलिखिता इव प्रकाममत्यन्तमालोकनीयतां दृश्यतां गताः प्राप्ताः।

अन्वय—प्रतापक्षतिशीतलाः अमी आदित्या च कथं चित्रन्यस्ता इव प्रकामालोकनीयतां गताः।

शब्दार्थ—प्रतापक्षतिशीतलाः=निस्तेज होने से शीतल। अमी=ये। आदित्याः=द्वादश सूर्य। चित्रन्यस्ताः इव=चित्रलिखित की तरह। कथम्=किस प्रकार। प्रकाम=नितान्त। आलोकनीयताम्=प्रकाश के विषय। गताः=हो चुके हैं।

संस्कृत टीका—प्रतापक्षतिशीतलाः=तेजःक्षयनिष्प्रभावाः, अमी=एते, आदित्याः=द्वादशसंख्याकाः भास्कराः, कथम्=केन कारणेन, चित्रन्यस्ता इव=चित्रलिखिताः इव, प्रकामम्=नितान्तम्, पर्याप्तम्, आलोकनीयताम्=शीतलत्वाद दर्शनीयताम्, गताः=प्राप्ताः।

समास—प्रकृष्टः तापः प्रतापः (गति तत्पु०), प्रतापस्य क्षतिः प्रतापक्षतिः (ष० तत्पु०), प्रतापक्षत्या शीतलाः (तृ० तत्पु०)। चित्रे न्यस्ताः चित्रन्यस्ताः (स० तत्पु०)। आलोकयितुं योग्याः आलोकनीयाः, आलोकनीयानां भावः आलोकनीयता, प्रकामम् आलोकनीयता, ताम् प्रकामालोकनीयताम् (सुप्सुपा समास)।

व्याकरण—न्यस्ताः—नि+अस्+क्त, प्र० बहु०। आलोकनीयताम्—आ+लोक्+अनीय+तल्+टाप्, द्वि० एक०। गताः—गम्+क्त, प्र० बहु०।

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अलङ्कार—उत्प्रेक्षा ।

हिन्दी अनुवाद—निस्तेज हो जाने से शीतल और चित्रलिखित के समान प्रभाविहीन ये द्वादश आदित्य भी (पहले की तरह) आँखों में (प्रकाशाधिक्य के कारण) चकाचौंध उत्पन्न क्यों नहीं कर रहे हैं ।

विशेष—तात्पर्य यह है कि तारकासुर के प्रताप के सम्मुख द्वादश आदित्यों (वर्ष के बारहों महीने में उदीयमान एक ही सूर्य के क्रमशः माघ मास से लेकर पौष मास तक अरुण, सूर्य, वेदज्ञ, तपन, इन्द्र, रवि, गभस्ति, यम, हिरण्यरेता, दिवाकर, मित्र, विष्णु—ये नाम हैं) का तेज मलिन हो गया है ॥ २४ ॥

पर्याकुलत्वान्मरुतां वेगभङ्गोऽनुमीयते ।
अम्भसामोघसंरोधः प्रतीपगमनादिव ॥ २५ ॥

सञ्जीविनी—पर्याकुलेति । मरुतां वायूनाम् । सप्तानामिति शेषः । पर्याकुलत्वात् स्खलितगतित्वाद्धेतोर्वेगस्य भङ्गोऽम्भसां जलानां प्रतीपगमनाद् उत्तानावरोहादित्यर्थः । ओघस्य संरोधः प्रवाहप्रतिवन्ध इवानुमीयते ।

अन्वय—मरुतां पर्याकुलत्वाद् वेगभङ्गः अम्भसां प्रतीपगमनाद् ओघसंरोधः इव अनुमीयते ।

शब्दार्थ—मरुताम् = पवनों के । पर्याकुलत्वात् = गति में स्खलन होने से । वेगभङ्गः = वेग का भंग । अम्भसाम् = जल का । प्रतीपगमनात् = उलटी दिशा की ओर गमन करने से । ओघसंरोधः = जल प्रवाह की रुकावट । अनुमीयते = अनुमान हो रहा है ।

संस्कृत टीका—मरुताम् = पवनानाम्, पर्याकुलत्वात् = व्याकुलतया गतिरोधात्, वेगभङ्गः = शीघ्रगामित्वावरोधः, अम्भसाम् = तोयानाम्, प्रतीपगमनात् = प्रतिकूलगतेः ऊर्ध्वमुखागत्य 'निम्नमाप इव स्वयम्' इत्यत्र जलं स्वभावतो निम्नं गच्छतीत्युक्तत्वात्, ओघसंरोधः = प्रवाहनिरोधः, इव = यथा, अनुमीयते—प्रतीयते ।

समास—वेगस्य भङ्गः वेगभङ्गः (ष० तत्पु०) । प्रतीपं च तद् गमनं प्रतीपगमनम् तस्मात् (कर्म०) । ओघस्य संरोधः ओघसंरोधः (ष० तत्पु०) ।

व्याकरण—पर्याकुलत्वात्—परि + आकुल + त्व, प० एक० ।

अलङ्कार—उपमा ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हिन्दी अनुवाद—जैसे जल-प्रवाह के भिन्न दिशा की ओर गतिमान होने से जल की गति में रुकावट का बोध होता है (ठीक वैसे ही) पवन वेग के टूटने के कारण उसकी गति के भंग का अनुमान हो रहा है।

विशेष—(१) पवन की गति स्खलन के कथन द्वारा कवि ने वायु की व्याकुलता को व्यञ्जित किया है। (२) मरुद्गणों की संख्या ४९ बतलाई गई है। ये दिति के पुत्र हैं। कहा जाता है कि इन्द्र द्वारा अपने पुत्रों (दैत्यों) का वध कर दिये जाने पर दिति ने इन्द्र का वध करने वाले पुत्र को उत्पन्न करना चाहा। जब वह गर्भस्थ थी तभी इन्द्र ने अपने वज्र से गर्भस्थ शिशु के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। उस गर्भस्थ शिशु के उनचास टुकड़े पीड़ा से चिल्लाने लगे तब दया के वशीभूत होकर इन्द्र ने उन्हें जीवन दान दिया और अपने संरक्षण में लेकर देवत्व प्रदान किया। ये ही मरुद्गण कहलाये। इन्हें ही वायु कहते हैं। गतियों के आधार पर इनके उनचास नाम हैं—पवन, प्रकम्पन, प्रभञ्जन आदि। (३) जल का प्रवाह सर्वदा उच्चस्थान से निम्नस्थान की ओर होता है। जल की गति को यदि नीचे से ऊपर की ओर ले जाया जाय तो वह क्षीण होकर अवरुद्ध हो जाती है॥ २५॥

आवर्जितजटामौलविलम्बिशशिकोटयः।

रुद्राणामपि मूर्धानः क्षतहुङ्कारशंसिनः॥ २६॥

सञ्जीविनी—आवर्जितेति। आवर्जितेषु परिभवदुःखावनम्रेषु जटानां मौलिषु जटाजूटेषु विलम्बिन्यः स्रंसिन्यः शशिकोटयश्चन्द्ररेखा येषां ते तथोक्ताः, हुङ्कारक्षत्यनुमापका इत्यर्थः। हुङ्कारशस्त्रा हि रुद्रा इति भावः।

अन्वय—आवर्जितजटामौलिविलम्बिशशिकोटयः रुद्राणामपि मूर्धानः क्षतहुंकारशंसिनः।

शब्दार्थ—आवर्जित = अवनमित, झुके हुए। जटामौलि = जटाजूट। विलम्बिनी = लटकती हुई। शशिकोटि = चन्द्रमा की कला। रुद्राणाम् = एकादश रुद्रों के। मूर्धानः = सिर। क्षतहुंकारशंसिनः = हुंकारशक्ति के नाश को प्रगट कर रहे हैं।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संस्कृत टीका--आवर्जितजटामौलिविलम्बिशशिकोटयः = तिरस्कार-दुःखेन अवनम्रजटाजूटेषु स्खलन्तः चन्द्ररेखाः, रुद्राणाम् = एकादश-रुद्राणाम्, अपि, मूर्धानः = मस्तकाः, क्षतहुंकारशंसिनः = विनष्टहुंकृतिसूचकाः ।

समास—जटानां मौलयः जटामौलयः (ष० तत्पु०), आवर्जिताश्च ते जटामौलयः, आवर्जितजटामौलिषु (कर्म०), विलम्बन्ते इति ताः (उपपद तत्पु०), शशीनां कोटयः शशिकोटयः (ष० तत्पु०); आवर्जितजटामौलिविलम्बिन्यः शशिकोटयः येषाम् ते आवर्जितजटामौलिविलम्बिशशिकोटयः (बहु०) । क्षतश्चासौ हुंकारः क्षतहुंकारः (कर्म०), क्षतहुंकारं शंसन्तीति ते क्षतहुंकार-शंसिनः (उपपद तत्पु०) ।

व्याकरण--आर्जित—आ + वर्ज् + क्त । विलम्बिन्--वि + लम्ब + णिनि (= इन्) । मूर्धानः--मूर्धन्, प्र० बहु० । क्षत--क्षणु + क्त । शंसिनः--शंस् + णिनि (इन्), प्र० बहु० ।

अलङ्कार--स्वभावोक्ति ।

हिन्दी अनुवाद--तिरस्कार के कष्ट से झुके हुए जटाजूटों में अवलम्बित चन्द्रमा की कलाओं से युक्त ग्यारह रुद्रों के सिर भी झुके होने के कारण इस बात को प्रकट कर रहे हैं कि उनकी प्रतीकार शक्ति नष्ट हो गई है ।

विशेष--(१) रुद्रों की संख्या एकादश बतलाई गयी है । पुराणों के अनुसार ब्रह्मा के भृकुटि मध्य से रुद्रों की उत्पत्ति हुई है । कहा जाता है कि ब्रह्मा ने अपने पुत्रों-सनक, सनन्दन आदि से सृष्टि की निर्मिति में भाग लेने को कहा किंतु उनकी निष्क्रियता देखकर ब्रह्मा अत्यन्त क्रुद्ध हो गये, तभी उनकी भौंहों के मध्यभाग से ग्यारह रुद्र उछलकर निकल पड़े । ये सूर्य की भाँति तेजस्वी तथा बड़े ही भयंकर हैं । इन रुद्रों में शिव सर्वप्रधान हैं । चूंकि क्रोधवशात् रुद्रों की उत्पत्ति हुई थी अतः ये अत्यन्त क्रोधी स्वभाव के हैं । हुंकार इनका आयुध माना जाता है । (२) महादैत्य तारकासुर से अपमानित होने के कारण अत्यन्त क्रोधी रुद्र देवताओं के मस्तक नीचे झुक गये हैं, जिससे यह भासित हो रहा है कि तारकासुर के पराक्रम के समक्ष हुंकाररूपी रुद्रायुध भी निष्फल हो गया ।। २६ ।।

लब्धप्रतिष्ठाः प्रथमं यूयं किं बलवत्तरैः ।
अपवादैरिवोत्सर्गाः कृतव्यावृत्तयः परैः ।। २७ ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सञ्जीविनी--लब्धेति । प्रथमं पूर्वं लब्धप्रतिष्ठा लब्धस्थितयः । लब्धावकाशा इत्यन्यत्र । यूयं बलवत्तरैः पौरुषातिरेकात्प्रबलतरैः । निरवकाशैरित्यपरत्र । परैः शत्रुभिरुत्सर्गाः सामान्यशास्त्राणि 'मा हिंस्यात्' इत्येवमादीनि । अपोद्यन्त एभिरित्यपवादैः 'गामालभेत' इत्यादिभिर्विशेषशास्त्रैरिव । किं कृतव्यावृत्तयः कृतप्रतिष्ठाभङ्गाः । कृतविषयसङ्कोचरूपबाधा इत्यन्यत्र । 'विषयसङ्कोच एव बाध' इत्याचार्याः । निषेधशास्त्रस्यावैदिकहिंसापरिहारेण लौकिकमात्रे व्यवस्थापनाद्विषयसङ्कोच इत्यलमतिगहनावगाहनेन ।

अन्वय--प्रथमं लब्धप्रतिष्ठाः यूयं बलवत्तरैः परैः उत्सर्गाः अपवादैः इव कृतव्यावृत्तयः ?

शब्दार्थ--प्रथमम्=पूर्व (काल) में । लब्धप्रतिष्ठाः=प्रतिष्ठा को उपलब्ध । यूयम्=आपलोग । बलवत्तरैः=अधिक बलयुक्त । परैः शत्रुओं के द्वारा । उत्सर्गाः=सामान्य नियम । अपवादैः=अपवाद (नियमों) के द्वारा । इव=की तरह । कृतव्यावृत्तयः=प्रतिष्ठा रहित हो चुके हैं ।

संस्कृत टीका--प्रथमम्=पूर्वम्, लब्धप्रतिष्ठाः=लब्धावकाशाः, यूयम्=भवन्तः (देवाः), बलवत्तरैः=प्रबलतरैः, पराक्रमाधिक्यात् अधिकशक्तिभिः, परैः=शत्रुभिः, उत्सर्गाः=सामान्यनियमाः, अपवादैः=विशेषनियमैः, इव, कृतव्यावृत्तयः=कृतप्रतिष्ठाभङ्गाः, कृतविषयसंकोचाः वा ?

समास--लब्धा प्रतिष्ठा यैः ते (बहु०) लब्धप्रतिष्ठाः । कृतव्यावृत्तिर्येषाम् ते (बहु०) कृतव्यावृत्तयः ।

व्याकरण--बलवत्तरैः--बल+मतुप्--बलवत्--प्रशस्त अर्थ में मतुप्--प्रशस्त बल वाले; बलवत्+तरप्--बलवत्तरः, अतिशय अर्थ में तरप् का प्रयोग है--अर्थात् अतिशय से प्रशस्त बलवाले ।

अलङ्कार--उपमा ।

हिन्दी अनुवाद--जिस प्रकार बाधक नियम सामान्य नियमों को प्रयोगहीन बना देते हैं । उसी प्रकार पूर्वकाल में विभिन्न प्रतिष्ठाओं को प्राप्त आप लोग अत्यधिक बलशाली शत्रुओं के द्वारा अपनी (स्वाभाविक) प्रतिष्ठा से रहित हो चुकें हैं क्या ?

विशेष--जैसे वेद में 'मा हिंस्यात्' हिंसा न करे, यह सामान्य नियम (उत्सर्ग) पहले कहा गया है । बाद में कहा गया है कि 'अग्निषोमीयं पशुमाल-

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भेत्' 'अग्नि और सोम से पवित्र व्यक्ति पशु बलि दे'---यह विशेष नियम (अपवाद) है। इसके द्वारा पूर्ववर्ती नियम बाधित हो गया है। अतः जिस प्रकार विशेष नियम सामान्य नियमों की प्रतिष्ठा को बाधित कर स्वयं प्रभावी हो जाता है। उसी प्रकार देवगण अपने से अधिक बलशाली शत्रुओं के द्वारा बाधित होकर अपनी पूर्व प्रतिष्ठा को खो चुके हैं ॥ २७ ॥

तद्ब्रूत वत्साः ! किमितः प्रार्थयध्वं समागताः ।
मयि सृष्टिर्हि लोकानां रक्षा युष्मास्ववस्थिता ॥ २८ ॥

सञ्जीविनी---तद्ब्रूतेति। तत्तस्मात्कारणात्। हे वत्साः पुत्रकाः ! "वत्सस्त्ववर्भकपुत्राद्योर्वर्षे वत्सं तु वक्षसि।" इति विश्वः। स्वयं पितामहत्वाद् वत्सा इत्यामन्त्रयते। सम्भूयागता समागताः इतो मत्तः किं प्रार्थयध्वम् ? किमिच्छतेत्यर्थः। ब्रूत। लोकरक्षणे यूयमेव कर्तार इत्याह---मयि लोकानां सृष्टिः। रक्षा युष्मास्ववस्थिता, अतस्तदर्थमपि नास्ति मदपेक्षेत्यर्थः।

अन्वय---तद् वत्साः ! समागताः (यूयम्) इतः किं प्रार्थयध्वम् ? ब्रूत। हि मयि लोकानां सृष्टिः, रक्षा युष्मासु अवस्थिता।

शब्दार्थ---तद् = इसलिए। वत्साः = पुत्रों। समागताः = एक साथ आये हुए (आप लोग)। इतः = यहाँ से (अर्थात् मुझसे)। किम् = क्या। प्रार्थयध्वम् = चाहते हैं। ब्रूत = कहें। हि = क्योंकि। मयि = मुझ में। लोकानाम् = लोकों की। सृष्टिः = उत्पत्ति। रक्षा = पालन। युष्मासु = आप सब पर। अवस्थिता = आश्रित, आधारित है।

संस्कृत टीका---तत् = अतएव, वत्साः = सुताः, समागताः = सम्भूयात्रायाताः, यूयम्, इतः = अस्मात्, मत्सकाशात्, किं प्रार्थयध्वम् = किमिच्छत ? ब्रूत = कथयत, हि = यतः, मयि = ममाधारेण, लोकानाम् = जगताम्, सृष्टिः = सर्जनम्, (अस्ति), रक्षा = पालनम्, युष्मासु = भवत्सु (देवेषु), अवस्थिता = अधिकृता।

व्याकरण---इतः---इदम् + तसिल्, पंचमी के अर्थ में तसिल् प्रत्यय हुआ है। प्रार्थयध्वम्---प्र + अर्थ् + लोट्, म० पु० बहु०। ब्रूत---ब्रू + लोट्, म० पु० बहु०। सृष्टिः---सृष्ट + क्तिन् प्र० एक०। अवस्थिता---अव + स्था + क्त + टाप् + सु।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हिन्दी अनुवाद—(मेरे) पुत्रो ! मुझे बताओ, इस प्रकार एक साथ आये हुए तुम सब मुझसे क्या चाहते हो ? क्योंकि लोकों की सृष्टि मेरे अधीन है। (अर्थात् मेरा कार्य है जगत् का निर्माण करना) और उन (सृष्ट लोकों) की रक्षा (का भार) तुम सब पर आश्रित है।

विशेष—ब्रह्मा सभी देवताओं के पूज्य और भगवान् नारायण के ही स्वरूप हैं। अधिकांश देवता ब्रह्मा से ही उत्पन्न हुए हैं। अतएव उन्होंने देवताओं को 'वत्साः' पद से सम्बोधित किया है। देवताओं के म्लान मुख-मण्डल को देखकर ब्रह्मा उनसे आने का कारण पूछते हैं। साथ ही यह भी बतलाते हैं कि मेरा कार्य तो केवल सृष्टिकी रचना करना है। मेरे द्वारा सृष्ट लोकों की रक्षा का कार्य अन्य देवगणों के अधीन है। यदि रक्षक ही पीड़ित हो तो वह रक्षा क्या करेगा ? इस कथन के द्वारा कवि ने यह व्यञ्जना की है कि समस्त सृष्टि तारकासुर से संत्रस्त है ॥ २८ ॥

ततो मन्दानिलोद्धतकमलाकरशोभिना ।
गुरुं नेत्रसहस्रेण नोदयामास वासवः ॥ २९ ॥

सञ्जीविनी—तत इति। ततो भगवत्प्रश्नानन्तरं वासव इन्द्रो गुरुं बृहस्पतिम्। "गुरू गीष्पतिपित्राद्यौ" इत्यमरः। मन्दानिलोद्धूतो यः कमलाकरः स इव शोभते इति तेन तथोक्तेन नेत्राणां सहस्रेण नोदयामास प्रेरयामास। सहस्र-ग्रहणमास्थातिशयार्थम्। अनिमेषाणामपि प्रयत्नवशादक्षिस्पन्दो न विरुध्यते।

अन्वय—ततः वासवः मन्दानिलोद्धूत-कमलाकरशोभिना नेत्रसहस्रेण गुरुं नोदयामास।

शब्दार्थ—ततः = तदनन्तर। वासवः = इन्द्र। मन्द = धीमी। अनिल = पवन। उदधूत = कम्पित। कमलाकर = पद्माकर। शोभिन् = शोभायुक्त। नेत्रसहस्रेण = सहस्र नेत्रों से। गुरुम् = (देवगुरु) बृहस्पति को। नोदयामास = (बोलने के लिए) प्रेरित किया।

संस्कृत टीका—ततः = ब्रह्मप्रश्नानन्तरम्, वासवः = इन्द्रः, मन्दानिलोद्धूतकमलाकरशोभिना = मन्दसमीरणकम्पितपद्माकरकान्तिना, इव, नेत्रसहस्रेण = लोचनसहस्रेण, गुरुम् = आचार्यंबृहस्पतिम्, नोदयामास = (प्रतिवचनं दातुं) प्रेरयामास ॥२९॥

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समास—मन्दश्चासौ अनिलश्च मन्दानिलः (कर्म०), मन्दानिलेन उद्धूतः मन्दानिलोद्धूतः (तृ० तत्पु०), मन्दानिलोद्धूतश्चासौ कमलाकरः मन्दानिलोद्धूतकमलाकरः (कर्म०), मन्दानिलोद्धूतकमलाकरेण शोभते इति तेन मन्दानिलोद्धूतकमलाकरशोभिना (उपपद तत्पु०)। नेत्राणाम् सहस्रम् तेन नेत्रसहस्रेण (ष० तत्पु०)।

अलङ्कार—उपमा।

व्याकरण—उद्धूत—उद् + धू + क्त। नोदयामास—नु + णिच् + लिट्, प्र० पु० एक०।

हिन्दी अनुवाद—तदनन्तर ब्रह्माके (द्वारा उक्त प्रकार से पूछने के अनन्तर अत्यन्त) धीमी वायु से कम्पित कमलों के समूह के समान शोभित हजार नेत्रों से (युक्त) इन्द्र ने (देवगुरु) वृहस्पति को बोलने के लिए प्रेरित किया ॥२९॥

स द्विनेत्रं हरेश्चक्षुः सहस्रनयनाधिकम्।
वाचस्पतिरुवाचेदं प्राञ्जलिर्जलजासनम् ॥३०॥

सञ्जीविनी—स इति। हरेरिन्द्रस्य। "इन्द्रो दुश्च्यवनो हरिः" इति हलायुधः। सहस्रान्नयनेभ्योऽधिकं सहस्रनयनाधिकम्, तदगोचरदाशत्वादिति भावः। द्वे नेत्रे यस्य तद् द्विनेत्रम्, प्रसिद्धाच्चक्षुषोऽयं विशेष इत्यर्थः। चक्षुश्चक्षुर्भूतः। चक्षुष्ट्वारोपस्य प्रकृतोपयोगित्वात्परिणामालङ्कारः। स वाचस्पतिः। कस्कादित्वादलुक्सत्त्वे। "षष्ठ्याः पतिपुत्र" इत्यादिना सत्त्वमिति स्वामी, तन्न, छन्दोविषयत्वात्। प्राञ्जलिः सन्। जलजासनं ब्रह्माणमिदमुवाच।

अन्वय—हरेः सहस्रनयनाधिकं द्विनेत्रं चक्षुः सः वाचस्पतिः प्राञ्जलिः सन् जलजासनम् इदम् उवाच।

शब्दार्थ—हरेः = इन्द्र की। सहस्रनयनाधिकम् = हजार नेत्रों से भी अधिक दृष्टि वाले। द्विनेत्रम् = दो नेत्ररूप। चक्षुः = दृष्टि वाले, चक्षुस्वरूप। वाचस्पतिः = वृहस्पति। प्राञ्जलिः = अंजलि बाँधकर, हाथ जोड़कर। जलजासनम् = ब्रह्मा से। उवाच = कहा।

संस्कृत टीका—हरेः = देवेन्द्रस्य, सहस्रनयनाधिकम् = सहस्रनयनादप्युत्कृष्टम्, द्विनेत्रम् = नेत्रद्वयात्मकम्, चक्षुः = नेत्रभूतः, सः वाचस्पतिः = सः वृहस्पतिः, प्राञ्जलिः = बद्धकरः, जलजासनम् = कमलासनम्, ब्रह्माणम्, इदम् उवाच = इदमब्रवीत्।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समास—सहस्रात् नयनेभ्योऽधिकम् सहस्रनयनाधिकम् (ष० तत्पु०)। द्वि नेत्रे यस्य तत् द्विनेत्रम् (बहु०)। वाचः पतिः वाचस्पतिः (अलुक् तत्पु०)। प्रकृष्ट. अञ्जलिः यस्य सः प्राञ्जलिः (बहु०)। जले जातम् जलजम्, जलजम् आसनं यस्य सः तम् जलजासनम् (बहु०)।

व्याकरण—वाचस्पतिः—यहाँ "षष्ठ्याः पतिपुत्रपृष्ठपारपद-पयस्पोषेषु" इस सूत्र से वाचः के विसर्ग को स् हुआ है। जलजसनम्—जलज—जले जातं जलजम् = जल = जन् + ड। उवाच—ब्रू + लिट्, प्र० पु० एक०।

अलङ्कार—परिणाम।

हिन्दी अनुवाद—इन्द्र के सहस्र नेत्रों से भी अधिक (तेज) दृष्टि वाले द्विनेत्र स्वरूप चक्षु से युक्त (देवगुरु) बृहस्पति ने हाथ जोड़ कर ब्रह्मा से यह कहा ॥३०॥

एवं यदात्थ भगवन्नामृष्टं नः परैः पदम्।
प्रत्येकं विनियुक्तात्मा कथं न ज्ञास्यसि प्रभो ॥ ३१ ॥

सञ्जीविनी—एवमिति। हे भगवन् षड्गुणैश्वर्यसम्पन्न ! यदात्थ 'कृत-व्यावृत्तयः परैः" इति यद् ब्रवीषि। "ब्रुवः पञ्चानाम्" इत्यादिनाऽऽहादेशः। "वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा" इति वर्तमानप्रयोगः। वामनस्तु भ्रान्तोऽयं प्रयोग इत्याह—'आहेति भूते णलन्तभ्रमात्—' इति। आहेत्युपलक्षणम्। तदेव सत्यम्। नोऽस्माकं पदमधिकारः परैः शत्रुभिरामृष्टमाक्षिप्तम्। हे प्रभो ! प्रत्येकं प्रतिपुरुषं विनियुक्तात्मा प्रवेशितस्वरूपः, सर्वान्तर्यामीत्यर्थः। कथं न ज्ञास्यसि न वेत्सि ? वर्तमानेऽपि वचनभङ्ग्या भविष्यन्निर्देशः प्रसिद्धः। "अपह्नवे ज्ञः" "अकर्मकाच्च" इत्यात्मनेपदविकल्पः।

अन्वय—भगवन् ! यद् आत्थ (तद्) एवम्। नः पदं परैः आमृष्टम्। प्रभो ! प्रत्येकं विनियुक्तात्मा कथं न ज्ञास्यसि ?

शब्दार्थ—यद् = जो (भी)। आत्थ = (आप) कह रहे हैं। एवम् = (वह ठीक) वैसा ही है। नः = हमारा। पदम् = निवास स्थान। परैः = शत्रुओं के द्वारा। आमृष्टम् = अधिकृत कर लिया गया है। प्रभो = हे नाथ। प्रत्येकम् = हरेक में। विनियुक्तात्मा = सर्वान्तर्यामी। कथम् = कैसे। न ज्ञास्यसि = नहीं जानते हैं।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संस्कृत टीका—हे भगवन् ! =हे प्रभो ', यद् आत्थ=यत् कथयसि, एवम्=तत्सत्यम् , नः=अस्माकम्. पदम्=निवासस्थानम्, परैः=शत्रुभिः, आमृष्टम् =अपहृतम्, प्रभो=हे भगवन्, प्रत्येकम्=प्रतिपुरूषम्, विनियुक्तात्मा विनिवेशितस्वरूपः, कथम् केन प्रकारेण, न ज्ञास्यसि=न वेत्सि। व्यापकत्वेन भवान् सर्वमेव जानाति इति भावः ॥ ३१ ॥

समास—विनियुक्ता आत्मा येन सः विनियुक्तात्मा (बहु०)।

व्याकरण—आत्थ—ब्रू (=आह) लट्, म० पु० एक०। आमृष्टम्-आ+मृष्+क्त, प्र० एक०। विनियुक्त—वि+नि+युज्+क्त।

हिन्दी अनुवाद—हे भगवन् ! इस प्रकार जो कुछ आप कह रहे हैं वह वैसा ही है। हमारे निवास स्थानोंको शत्रुगणों ने अपने अधिकार में कर लिया है। हे प्रभो ! आप सर्वव्यापी हैं (अतः यह सब) आप कैसे नहीं जानते ? (भाव यह है कि सर्वव्यापी होने से आपसे कुछ भी छिपा हुआ नहीं है) ॥३१॥

भवल्लब्धवरोदीर्णस्तारकाख्यो महासुरः।
उपप्लवाय लोकानां धूमकेतुरिवोत्थितः ॥ ३२ ॥

सञ्जीविनी—भवदिति। भवतस्त्वत्तो लब्धेन वरेणोदीर्णं उद्धतः तारक इत्याख्या नामधेयं यस्य सः तारकाख्यः। महानसुरो महासुरः। 'सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः" इति तत्पुरुषः। धूमकेतुरुत्पातविशेष इव लोकानामुपप्लवायोपद्रवायोत्थित उत्पन्नः।

अन्वय—भवल्लब्धवरोदीर्णः तारकाख्यः महासुरः धूमकेतुः इव लोकानाम् उपप्लवाय उत्थितः।

शब्दार्थ—भवल्लब्ध.—आपसे गृहीत। वरोदीर्णः=वरदान के कारण उद्धत। तारकाख्यः=तारक नाम वाला। महासुरः=महादैत्य। धूमकेतुः=उत्पात का सूचक नक्षत्र-विशेष। लोकानाम्=लोकों के। उपप्लवाय=विनाश के लिए। उत्थितः=उत्पन्न (हुआ है)।

संस्कृत टीका—भवल्लब्ध=भवतः सकाशाद् वरं प्राप्य, वरोदीर्णः=वरेण उदीर्णः: समुद्धतः तारकाख्यः=तारकाभिधः, महासुरः=महादैत्यः, धूमकेतुरिव=अनिष्टसूचिका पुच्छलतारा इव, लोकानाम्=भुवनानाम्, उपप्लवाय=विनाशाय, उत्थितः=जातः। (अस्ति)।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समास--भवतः लब्धः भवल्लब्धः (प० तत्पु०), भवल्लब्धश्चासौ वरः भवल्लब्धवरः (कर्म०), भवल्लब्धवरेण उद्दीर्णः (तृ० तत्पु०)। तारकः आख्या यस्य सः तारकाख्यः (बहु०)। महांश्चासौ असुरः सः महासुरः (कर्म०)।

व्याकरण—लब्ध—लभ्+क्त। उदीर्ण—उद्+ईर्+क्त। उत्थितः—उद्+स्था+क्त, प्र० एक०।

अलङ्कार—उपमा।

हिन्दी अनुवाद—आपसे वरदान पाकर तारक नामक महादैत्य (अत्यन्त) उद्धत हो गया है (ऐसा लगता है जैसे कि वह) धूमकेतु की तरह संसार को विनष्ट करने के लिए उत्पन्न हुआ है।

विशेष--धूमकेतु (पुच्छलतारा) एक नक्षत्र विशेष है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार आकाश में धूमकेतु का उदय होने पर नाना प्रकार के विध्वंस होने लगते हैं, जैसे--भूकम्प, महामारी, भीषण नरसंहार आदि ॥ ३२ ॥

पुरे तावन्तमेवास्य तनोति रविरातपम्।
दीर्घिकाकमलोन्मेषो यावन्मात्रेण साध्यते ॥ ३३ ॥

सञ्जीविनी--पुर इति। अस्य तारकस्य पुरे रविः सूर्यस्तावन्तं तावन्मात्रमेवातपं तनोति। यावन्मात्रेण यावतैव। यावती मात्रा मितिर्यस्य यावन्मात्रं तेन वा, अल्पपरिमाणेनेत्यर्थः। "मात्रा परिच्छदे। अल्पे च परिमाणे सा मात्रं कार्त्स्न्येऽवधारणे।" इत्यमरः। दीर्घिकासु क्रीडावापीषु कमलानामुन्मेषो विकासः साध्यते निष्पाद्यते। कठोरकिरणोऽपि मन्दोष्णः सन्नेव तद्भीत्या पुरे प्रकाशत इत्यभिप्रायः।

अन्वय--अस्य पुरे रविः तावन्तम् एव आतपं तनोति, यावन्मात्रेण दीर्घिकाकमलोन्मेषः साध्यते।

शब्दार्थ—अस्य=इस तारकासुर के। पुरे=नगर में, रविः=सूर्य, तावन्तमेव=उतनी ही। आतपम्=धूप। तनोति=फैलाता है। यावन्मात्रेण=जितनी धूप से। दीर्घिकाकमलोन्मेषः=बावलियों के कमलों का खिलना। साध्यते=निष्पन्न होता है।

संस्कृत टीका—अस्य=तारकासुरस्य, पुरे=पुर्याम्, रविः=सूर्यः, तावन्तमेव=तावदेव, आतपम्=घर्मम्, तनोति=विस्तारयति, यावन्मात्रेण=

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यावता प्रकाशेनैव, दीर्घिकाकमलोन्मेषः=वापीनां कमलानां विकासः, साध्यते =सम्पाद्यते ।

समास—यावती मात्रा यस्य सः तेन यावन्मात्रेण (बहु०) । कमलानाम् उन्मेषः कमलोन्मेषः (ष० तत्पु०), दीर्घिकासु कमलोन्मेषः दीर्घिकाकमलोन्मेषः (स० तत्पु०) ।

व्याकरण—तावन्तम्—तत्+वतुप्, द्वि० एक० । तनोति—तन्+लट्, प्र० पु० एक० । साध्यते—साध्+कर्मणि लट्, प्र० पु० एक० ।

हिन्दी अनुवाद—इस (तारकासुर) के नगर में सूर्य उतनी ही धूप उत्पन्न करता है जितने से बावलियों में कमलों का खिलना सम्भव होता है ।

विशेष—भाव यह है कि ताकासुर के भय से सूर्य भी अपने स्वाभाविक तेज (अत्यधिक उष्णता) से तप्त नहीं होता है । केवल उतनी ही किरणों को फैलाता है, जितने से कमल विकसित हो सके ।। ३३ ।।

सर्वाभिः सर्वदा चन्द्रस्तं कलाभिर्निषेवते ।
नादत्ते केवलां लेखां हरचूडामणीकृताम् ।। ३४ ।।

सञ्जीविनी—सर्वाभिरिति । चन्द्रस्तं त रकं सर्वदा, कृष्णपक्षेऽपीत्यर्थः । सर्वाभिः कलाभिर्निषेवते । 'कला तु षोडशो भागः" इत्यमरः । केवलां हरचूडामणीकृतां शिवशिरोमणीकृतां लेखां नादत्ते न गृह्णाति ।

अन्वय—चन्द्रः तं सर्वदा सर्वाभिः कलाभिः निषेवते, केवलां हरचूडामणीकृतां लेखां न आदत्ते ।

शब्दार्थ—चन्द्रः=चन्द्रमा । तम्=उस (तारकासुर) की । सर्वदा=सदैव । सर्वाभिः=सम्पूर्ण । कलाभिः=कलाओं से । निषेवते=सेवा में रहता है । केवलाम्=मात्र । हरचूडामणीकृताम्=शिव के शिरोभूषणरूप । लेखाम् =(अपनी) कला को । न आदत्ते=ग्रहण नहीं करता ।

संस्कृत टीका—चन्द्रः=चद्रमा, तम् तारकासुरम्, सर्वदा=नित्यम्, सदा; सर्वाभिः=समस्ताभिः, कलाभिः=षोडशभागात्मिकाभिः अंशैः, निषेवते =भजते, केवलाम्=एकाम्, हरचूडामणीकृताम्=शिवशिरोरत्नभूताम्, लेखाम्=कलाम्, न आदत्ते=न गृह्णाति ।

समास—हरस्य चूडामणीकृता ताम् हरचूडामणीकृताम् (ष० तत्पु०) ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

व्याकरण—निषेवते—नि + षिवु + लट्, प्र० पु० एक० । हरचूडामणीकृताम्—हर + चूडामणि + च्वि + कृ + क्त + टाप्, द्वि० एक० । आदत्ते—आ + दा + लट्, प्र० पु० एक० ।

हिन्दी अनुवाद – (भगवान्) शंकर के शिरोभूषणरूपी (चन्द्र) कला से विरहित चन्द्रमा अपनी (शेष) सम्पूर्ण कलाओं से सदैव उस (तारकासुर) की सेवा में रत रहता है ।

विशेष--अभिप्राय यह है कि तारकासुर ने चन्द्रमा को अपने अधीन कर लिया था । चन्द्रमा भी केवल भगवान् शिव के मस्तक पर विराजमान चन्द्ररेखा को छोड़कर अपनी सम्पूर्ण सोलह कलाओं से सदैव अर्थात् कृष्ण और शुक्लपक्ष दोनों में उसकी सेवा में संलग्न रहता है ।। ३४ ।।

व्यावृत्तगतिरुद्याने कुसुमस्तेयसाध्वसात् ।
न वाति वायुस्तत्पार्श्वे तालवृन्तानिलाधिकम् ।। ३५ ।।

सञ्जीविनी--व्यावृत्तेति । वायुः स्तेनस्य भावः कर्म वा स्तेयं चौर्यम् । "स्तेनाद्यन्नलोपश्च" इति यत्प्रत्ययो नलोपश्च । कुसुमानां स्तेयं तस्मात्स्तेयाभियोगाद् दण्डाद्वा साध्वसं भयं तस्माद्धेतोरुद्याने व्यावृत्तगतिः । निवृत्तोद्यानसञ्चारः सन्नित्यर्थः । सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात्समासः । तत्पार्श्वे तत्समीपे । तालस्य वृन्तमस्येति वा तालवृन्तं तस्यानिलाद् व्यजनसञ्चारपवनादधिकं यथा तथा न वाति । "व्यजनं तालवृन्तकम्" इत्यमरः ।

अन्वय—वायुः कुसुमस्तेयसाध्वसात् उद्याने व्यावृत्तगतिः (सन्) तत्पार्श्वे तालवृन्तानिलाधिकम् न वाति ।

शब्दार्थ—वायु = पवन । कुसुमस्तेयसाध्वसात् = फूलों की चोरी के भय से । उद्याने = उपवन में । व्यावृत्तगतिः = गमन छोड़कर । तत्पार्श्वे = उसके पास । तालवृन्तानिलाधिकम् = पंखे की हवा से अधिक । न वाति = नहीं बहता है ।

संस्कृत टीका—वायुः = पवनः, कुसुमस्तेयसाध्वसात् = प्रसूनापहरणाभियोगात्, पुष्पचौर्यभयात्, उद्याने = उपवने, व्यावृत्तगतिः = निवृत्तसञ्चारः, तत्पार्श्वे = तारकासुरसमीपे, तालवृन्तानिलाधिकम् = व्यजनस्य वायोरतिरिक्तम्, न वाति = न सञ्चरति ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समास—कुसुमानां स्तेयम् कुसुमस्तेयम् (ष० तत्पु०)। कुसुमस्तेयात् साध्वसम् तस्मात् कुसुमस्तेयसाध्वसात् (प० तत्पु०) व्यावृत्ता गतिः यस्य सः व्यावृत्तगतिः (बहु०)। तस्य पार्श्वम् तत्पार्श्वम्, तस्मिन् तत्पार्श्वे (ष० तत्पु०)। तालस्य इव वृन्तम् अस्य इति तालवृन्तम् (बहु०) तालवृन्तस्य अनिलः तालवृन्तानिलः (ष० तत्पु०), तालवृन्तानिलाद् अधिकम् तालवृन्तानिलाधिकम् (प० तत्पु०)।

व्याकरण—स्तेय—स्तेन + यत्। व्यावृत्त—वि + आ + वृत् + क्त। वाति—वा + लट्, प्र० पु० एक०।

हिन्दी अनुवाद—इस भय के कारण उसे पुष्पों का चोर न समझा जाय, पवन उद्यान में न जाकर उस (तारकासुर) के पास (जितनी) पंखे की हवा (होती है उस) से अधिक गतिमान् नहीं होता।

विशेष—तात्पर्य यह है कि तारकासुर के भय से वायु भी अत्यन्त मन्दगति से बहता था। तथा कहीं अन्यत्र न जाकर निरन्तर उसकी सेवा में ही संलग्न रहता था ॥३५॥

पर्यायसेवामुत्सृज्य पुष्पसम्भारतत्पराः।
उद्यानपालसामान्यमृतवस्तमुपासते ॥ ३६ ॥

सञ्जीविनी—पर्यायेति। ऋतवः षड् वसन्तादयः पर्यायसेवाम्। क्रमसेवामुत्सृज्य पुष्पाणां सम्भारे सङ्ग्रहे तत्पराः, आसक्ताः सन्तः इत्यर्थः। "तत्परे प्रसितासक्तौ" इत्यमरः। उद्यानपालैः उद्यानाधिकृतैः सामान्यं साधारणं यथा भवति तथा तं तारकमुपासते, शीतोष्णादिदोषप्रकाशनं तु दूरापास्तमित्यर्थः।

अन्वय—ऋतवः पर्यायसेवामुत्सृज्य पुष्पसम्भारतत्पराः उद्यानपालसामान्यं तं उपासते।

शब्दार्थ—ऋतवः = छहों ऋतुएँ। पर्यायसेवाम् = क्रमानुसार सेवा को। उत्सृज्य = छोड़कर। पुष्पसम्भारतत्पराः = फूलों को एकत्र करने में संलग्न। उद्यानपालसामान्यम् = माली की तरह। तम् = उस (तारकासुर) की। उपासते = सेवा में संलग्न रहती हैं।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संस्कृत टीका—ऋतवः=वसन्तादयः षड् ऋतवः, पर्यायसेवाम्=क्रमबद्धसेवाम्, उत्सृज्य=परित्यज्य, पुष्पसम्भारतत्पराः=कुसुमानां संकलने संलग्नाः (सन्), उद्यानपालसामान्यम्=उपवननियुक्त-रक्षकवत्, तम्=तारकासुरम्, उपासते=सेवन्ते।

समास—पर्यायेण सेवा ताम् पर्यायसेवाम् (तृ० तत्पु०) पुष्पाणां सम्भारः पुष्पसम्भारः (ष० तत्पु०) पुष्पसम्भारे तत्पराः पुष्पसंभारतत्पराः (स० तत्पु०)। उद्यानं पालयन्तीति उद्यानपालाः (उपपद तत्पु०), उद्यानपालैः सामान्यम् उद्यानपालसामान्यम् (तृ० तत्पु०)।

व्याकरण—उत्सृज्य-उत्+सृज्+क्त्वा (=ल्यप्)। सामान्यम्—समान+ष्यञ्। उपासते—उप+आस्+लट्, प्र० बहु०।

अलङ्कार—उपमा और अतिशयोक्ति।

हिन्दी अनुवाद—(सभी) षड् ऋतुएँ क्रम के अनुसार (सम्पन्न होने वाली) सेवा को छोड़कर अर्थात् एक साथ मिलकर (अपने समय के) पुष्पों को एकत्रित करने में व्यग्र होती हुई उद्यान पालकों (अर्थात् मालियों) के समान उस (तारकासुर) की सेवा में संलग्न रहती हैं।

विशेष—आशय यह है कि एक ही समय में अथवा एक साथ षट् ऋतुएँ अपनी-अपनी पुष्प-समृद्धि से युक्त होकर उस महादैत्य की सेवा में रत रहती हैं॥ ३६॥

तस्योपायनयोग्यानि रत्नानि सरितां पतिः।
कथमप्यम्भसामन्तरानिष्पत्तेः प्रतीक्षते॥ ३७॥

सञ्जीविनी— तस्येति। सरितां पतिः समुद्रस्तस्य तारकस्योपायनानां प्राभृतानां योग्यानि "प्राभृतं तु प्रदेशनम्, उपायनम्" इत्यमरः। रत्नान्यम्भसामन्तः आनिष्पत्तेः परिपाकपर्यन्तम्। विकल्पादसमासः। कथमपि महता यत्नेन प्रतीक्षते, कदा वा परिपच्येरन्नितयैकाग्र्येण पालयतीत्यर्थः।

अन्वय—सरितां पतिः तस्य उपायनयोग्यानि रत्नानि अम्भसाम् अन्तः आनिष्पत्तेः कथमपि प्रतीक्षते।

शब्दार्थ—सरितां पतिः=नदियों के स्वामी अर्थात् समुद्र। उपायनयोग्यानि=उपहार के योग्य। रत्नानि=रत्नों को। अम्भसाम्=जल के।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्तः = मध्य । आनिष्पत्तेः = परिपाक काल के समय तक । कथमपि = किसी प्रकार । प्रतीक्षते = प्रतीक्षा करता है ।

संस्कृत टीका—सरितां पतिः = समुद्रः, तस्य = तारकासुरस्य, उपायन-योग्यानि = उपहारयोग्यानि, रत्नानि = मुक्तादीनि, अम्भसाम् = जलानाम्, अन्तः = मध्ये, आनिष्पत्तेः = परिपाकपर्यन्तम्, कथमपि = महता क्लेशेन तत्परतया, प्रतीक्षते = पालयति ॥३७॥

समास—उपायनानां योग्यानि उपायनयोग्यानि (ष० तत्पु०) ।

व्याकरण—सरिताम्—सरित् ष० बहु०, अम्भसाम्-अम्भस् ष० बहु० । आनिष्पत्तेः—मर्यादा अर्थ में आङ् प्रयुक्त हुआ है । अतः विकल्प से समास होता है । आ निष्पत्तेः—आसमस्त प्रयोग है । प्रतीक्षते—प्र + ईक्ष् + लट्, प्र० पु० एक० ।

हिन्दी अनुवाद—समुद्र उस (तारकासुर) को भेंट देने योग्य मणियों की, जल के मध्य सम्पन्न होने वाले (उनके समुचित) परिपाक के समय की अत्यन्त यत्न पूर्वक अर्थात् व्यग्रता से प्रतीक्षा करता है । (अथवा परिपक्व हो जाने तक प्रयत्न पूर्वक रक्षा करता है) ॥३७॥

> **ज्वलन्मणिशिखाश्चैनं वासुकिप्रमुखा निशि ।**
> **स्थिरप्रदीपतामेत्य भुजङ्गाः पर्युपासते ॥ ३८ ॥**

सञ्जीविनी—ज्वलदिति । किञ्चेति चार्थः । ज्वलन्त्यो मणीनां शिरोरत्नानां शिखा ज्वाला येषां ते वासुकिप्रमुखा भुजङ्गाः सर्पाः सिद्धाश्च छन्दयते । "भुजङ्गः सिद्धसर्पयोः" इत्यमरः । निशि स्थिरप्रदीपतामनिर्वाणदीपत्वमेत्यैनं तारकं पर्युपासते परिवृत्य सेवन्ते ।

अन्वय—ज्वलन्मणिशिखाः वासुकिप्रमुखाः भुजङ्गाः च निशि स्थिरप्रदीपताम् एत्य एनं पर्युपासते ।

शब्दार्थ—ज्वलन्मणिशिखाः = प्रदीप्त मणियों की ज्वालाओं से युक्त । वासुकिप्रमुखाः = वासुकि आदि प्रमुख । भुजङ्गाः = (महा)सर्प । निशि = रात में । स्थिरप्रदीपताम् = स्थिर प्रदीप का रूप । एत्य = धर कर । एनम् = इस (तारकासुर) की पर्युपासते = चारों ओर विद्यमान होकर सेवा करते हैं ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संस्कृत टीका—ज्वलन्मणिशिखाः = देदीप्यमानाः मस्तकस्थरत्नानाम् अर्चिषः, वासुकिप्रमुखाः = वासुकिप्रधानाः, भुजङ्गाः = महासर्पाः, निशि = रात्रौ, स्थिरप्रदीपताम् = अविचलदीपकत्वम्, एत्य = प्राप्य, एनं = तारकासुरम्, पर्युपासते = प्रकाशेन सेवन्ते।

समास—मणीनां शिखाः मणिशिखाः (प० तत्पु०) ज्वलयन्त्यो मणिशिखा येषां ते ज्वलन्मणिशिखाः (बहु०)। वासुकि प्रमुखः येषां ते वासुकिप्रमुखाः (बहु०)। स्थिराश्च ते प्रदीपाश्च स्थिरप्रदीपाः (कर्म०), स्थिरप्रदीपानां भावः स्थिरप्रदीपता, तां स्थिरप्रदीपताम्।

व्याकरण—प्रदीपताम्—प्रदीप + तल् + टाप्, द्वि० एक०। एत्य—इ + क्त्वा (= ल्यप्)। पर्युपासते—परि + उप + आस्, लट्, प्र० बहु०।

अलङ्कार—व्यतिरेक।

हिन्दी अनुवाद—देदीप्यमान (चमकते हुए) रत्नों की ज्वाला से युक्त वासुकि आदि प्रमुख महासर्प रात्रिकाल में स्थिर (दीपक) सा बनकर उस (तारकासुर) की भली प्रकार से सेवा करते हैं।

विशेष—तात्पर्य यह है कि तारकासुर का आतंक तीनों लोकों में व्याप्त है। पाताल लोक में रहने वाले वासुकि आदि सर्पराज भी उसकी सेवा में तत्पर रहते हैं। उनके शिरों में स्थित मणियाँ तारकासुर के यहाँ स्थायी दीपक का कार्य करती हैं। सामान्य दीपक तो वायुवशाद् बुझ जाते हैं किंतु मणि का प्रकाश स्थायी होता है॥ ३८॥

तत्कृतानुग्रहापेक्षी तं मुहुर्दूतहारितैः।
अनुकूलयतीन्द्रोऽपि कल्पद्रुमविभूषणैः॥ ३९॥

सञ्जीविनी—तत्कृतेति। इन्द्रोऽपि तेन तारकेण कृतं तत्कृतमनुग्रहं प्रसादमपेक्षत इति तथोक्तः सन्। मुहुर्दूतहारितैर्दूतप्रापितैः कल्पद्रुमाणां विभूषणैः, तत्प्रसूनैरित्यर्थः। तं तारकमनुकूलयत्यनुकूलं करोति।

अन्वय—इन्द्रः अपि तत्कृतानुग्रहापेक्षी (सन्) मुहुः दूतहारितैः कल्पद्रुमविभूषणैः तम् अनुकूलयति।

शब्दार्थ—इन्द्रः अपि = (देवराज) इन्द्र भी। तत्कृतानुग्रहापेक्षी = उस (तारकासुर) के द्वारा किये गए अनुग्रह की अपेक्षा करते हुए। मुहुः =

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बार-बार। दूतहारितैः=दूतों के द्वारा प्रेषित। कल्पद्रुमविभूषणैः=कल्पवृक्ष के पुष्परूपी आभूषणों से। तम्=उसे। अनुकूलयति=अनुकूल करता है।

संस्कृत टीका—इन्द्रः अपि=देवराजः अपि, तत्कृतानुग्रहापेक्षी=तारकासुरकृतप्रसादाशंसी सन्, मुहुः=वारं वारं, दूतहारितैः=सन्देशहर प्रेषितैः, कल्पद्रुमविभूषणैः=कल्पतरुकिसलयैः, कुसुमादीनामाभूषणैः, तम्=तारकम्, अनुकूलयति=स्वानुकूलं करोति।

समास—तेन कृतः तत्कृतः (तृ० तत्पु०), तत्कृतश्चासौ अनुग्रहः तत्कृतानुग्रहः (कर्म०), तत्कृतानुग्रहम् अपेक्षते इति सः तत्कृतानुग्रहापेक्षी (उपपद तत्पु०)। दूतैः हारितानि दूतहारितानि तैः दूतहारितैः (तृ० तत्पु०)। कल्पद्रुमाणां विभूषणानि तैः कल्पद्रुमविभूषणैः (ष० तत्पु०)।

व्याकरण—अपेक्षी—अप+ईक्ष्+णिनि, प्र० एक०। हारित—हृ+णि+क्त। अनुकूलयति—अनुकूल+णिच्, लट्, प्र० पु० एक०।

हिन्दी अनुवाद—देवराज इन्द्र भी बार-बार दूतगणों से कल्पवृक्ष के (पुष्परूपी) आभूषणों को भेजकर उस (तारकासुर) के अनुग्रह की अपेक्षा करते हुए उसको अपने अनुकूल बनाना चाहते हैं।

विशेष—(१) जब देवराज इन्द्र ही तारकासुर की सेवा में तत्पर हैं तो उसके अधीनस्थ देवताओं का कहना ही क्या ? (२) समुद्रमन्थन से निकले चौदह रत्नों में से कल्पवृक्ष भी एक है। यह वृक्ष मनोवाञ्छित फल प्रदान करता है।। ३९।।

इत्थमाराध्यमानोऽपि क्लिश्नाति भुवनत्रयम्।
शाम्येत्प्रत्यपकारेण नोपकारेण दुर्जनः ॥ ४० ॥

सञ्जीविनी—इत्थमिति। इत्थमुक्तप्रकारेण रविशशिपवनोदधिभुजङ्गसुरेन्द्रैराराध्यमानोऽपि भुवनत्रयं क्लिश्नाति पीडयति। तथाहि—दुर्जनः प्रत्यपकारेण प्रतीकारेणैव शाम्येच्छान्तो भवेत्, उपकारेण तु न शाम्येत्, प्रत्युत प्रकुप्यतीति भावः।

अन्वय—इत्थम् आराध्यमानः अपि सः भुवनत्रयं क्लिश्नाति। तथाहि दुर्जनः प्रत्यपकारेण शाम्येत्, उपकारेण न (शाम्येत्)

शब्दार्थ—इत्थम्=इस तरह। आराध्यमानः=आराधित हुआ। अपि=भी। भुवनत्रयम्=तीनों लोकों को। क्लिश्नाति=पीड़ित कर रहा है।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दुर्जनः = दुष्ट पुरुष। प्रत्यपकारेण = प्रतीकार के द्वारा। शाम्येत् = शान्त होता है। उपकारेण न = उपकार के द्वारा नहीं।

संस्कृत टीका—इत्थम् = उक्तप्रकारेण, आराध्यमानः = अर्च्यमानः, अपि, सः = वह (तारकासुरः), भुवनत्रयम् = लोकत्रयम्, क्लिश्नाति = पीडयति, दुर्जन = खलः, प्रत्यपकारेण = प्रतीकारेण, शाम्येत् = शान्तो भवेत्, उपरतो भवेद्वा, उपकारेण = उपकृतिना, अनुकूलाचरणेन, न = नैव।

समास—भुवनानां त्रयम् भुवनत्रयम् (ष० तत्पु०)

व्याकरण—आराध्यमानः—आ + राध् + य + शानच् प्र० एक०। क्लिश्नाति—क्लिश् + लट्, प्र० पु० एक०। शाम्येत्—शम् + लिङ्, प्र० पु० एक०।

अलङ्कार—अर्थान्तरन्यास।

हिन्दी अनुवाद—इस तरह (सबसे) सेवित होता हुआ भी वह (तारकासुर) तीनों लोकों को पीड़ित कर रहा है। दुष्ट पुरुष प्रतीकार-अपकार से शमित होता है, (उपकार) से शान्त नहीं होता ॥४०॥

तेनामरवधूहस्तैः सदयालूनपल्लवाः।
अभिज्ञाश्छेदपातानां क्रियन्ते नन्दनद्रुमाः ॥ ४१ ॥

सञ्जीविनी—तेनेति। तेन तारकेणामरवधूहस्तैः सुकुमारैरिति भावः। तैरपि सदयमालूना अवतंसार्थं छिन्नाः पल्लवा येषां ते नन्दनद्रुमाः। छेदाश्च पाताश्च छेदपातास्तेषाम्। अभिजानन्तीत्यभिज्ञाः। कृद्योगात्कर्मणि षष्ठी। क्रियन्ते।

अन्वय—तेन अमरवधूहस्तैः सदयालूनपल्लवाः नन्दनद्रुमाः छेदपातानाम् अभिज्ञाः क्रियन्ते।

शब्दार्थ—तेन = इस (तारकासुर) के द्वारा। अमरवधूहस्तैः = देववधुओंके हाथों से। सदयालूनपल्लवाः = दयापूर्वक तोड़े जाते हुए पल्लवों वाले। नन्दनद्रुमाः = नन्दन वन के वृक्ष। छेदपातानाम् = काटने और गिराने (की क्रिया से)। अभिज्ञाः क्रियन्ते = परिचित किये जाते हैं।

संस्कृत टीका—तेन = तारकेण, अमरवधूहस्तैः = देवाङ्गनाकोमलकरैः, सदयालूनपल्लवाः = दयापूर्वकमवचितकिसलयाः, नन्दनद्रुमाः = देवोपवन-

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तरवः, छेदपातानाम् = खण्डनपूर्वकनिपतनानाम् । अभिज्ञाः = परिचिताः, क्रियन्ते = विधीयन्ते । सुराङ्गना नन्दनोपवनस्य येषां कल्पवृक्षाणां किसलयान् अलंकरणार्थं सदयं स्वकीयैः सुकुमारैः करैरवचिन्वन्ति तान् नन्दनतरून् अयं निष्ठुरोऽसुरः निर्दयं छिनत्ति पातयति च वारं वारम् ।

समास--अमराणां वध्वः अमरवध्वः (ष० तत्पु०), अमरवधूनां हस्ताः अमरवधूहस्ताः तैः अमरवधूहस्तैः (ष० तत्पु०) । सदयम्--दयया सहितं यथा स्यात्तथा सदयम् (बहु०), सदयम् आलूनाः सदयालूनाः सदयालूनाः पल्लवाः येषाम् ते सदयालूनपल्लवाः (बहु०) । नन्दनस्य द्रुमाः नन्दनद्रुमाः (ष० तत्पु०) छेदाश्च पाताश्च ते छेदपाताः तेषाम् छेदपातानाम् (द्वन्द्व) । अभिजानन्तीति ते अभिज्ञाः (उपपद तत्पु०) ।

व्याकरण --आलून--आ + लू + क्त । अभिज्ञाः--अभि + ज्ञा + क्त (इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः), प्र० पु० बहु० । क्रियन्ते--कृ + कर्मणि लट्, प्र० पु० बहु० ।

अलङ्कार--पर्यायोक्त ।

हिन्दी अनुवाद--वह तारकासुर नन्दन वन के वृक्षों को जिसके पल्लवों को देववधुएँ, जहाँ अपने (कोमल) हाथों से दयापूर्वक तोड़ती थीं (वहीं वह तारकासुर उन वृक्षों को) काटकर गिराता (रहता) है ।

विशेष--तात्पर्य यह है कि नन्दन उद्यान के जिन वृक्षों के पुष्पों तथा किसलयों को देवाङ्गनाएँ अपने आभूषण के निमित्त अत्यन्त दयापूर्वक तोड़ती थीं कि कहीं इन वृक्षों को पीड़ा न हो, उन्हीं वृक्षों को यह महासुर अत्यन्त निर्ममतापूर्वक नष्ट कर रहा है । नन्दन वन देवताओं का क्रीडोद्यान है । भाव यह है कि तारकासुर ने स्वर्ग में भी आतंक मचा रखा है ॥४१॥

वीज्यते स हि संसुप्तः श्वाससाधारणानिलैः ।
चामरैः सुरवन्दीनां बाष्पसीकरवर्षिभिः ॥४२॥

सञ्जीविनी--वीज्यत इति । हि यस्मात्कारणात्स तारकः संसुप्तः सन् । श्वाससाधारणो निश्श्वाससमानोऽनिलो येषां तैः, ततोऽप्याधिक्ये निद्राभङ्गभयादिति भावः । बाष्पसीकरवर्षिभिः, तासां स्त्रीणां रोदनस्यायमवसर इति भावः । सुरवन्दीनां सुरप्रग्रहस्त्रीणां सम्बन्धिभिः । "प्रग्रहापग्रही वन्द्याम्" इत्यमरः । चामरैर्वीज्यते ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्वय—हि सः संसुप्तः (सन्) श्वाससाधारणानिलैः वाष्पसीकरवर्षिभिः सुरवन्दीनां चामरैः वीज्यते ।

शब्दार्थ—संसुप्तः = अच्छी प्रकार से सोया हुआ । श्वाससाधारणानिलैः = श्वास के समान वायु के द्वारा । वाष्पसीकरवर्षिभिः = अश्रु कणों को गिराती हुई । सुरवन्दीनाम् = देवगणों की वन्दी स्त्रियों से । चामरैः = चँवरों से । वीज्यते = पंखा किया जाता है ।

संस्कृत टीका—हि = यतः, सः = तारकः, संसुप्तः = सुखेन निद्रामवाप्तः, श्वाससाधारणानिलैः = श्वाससदृशपवनैः, वाष्पसीकरवर्षिभिः = अश्रुजललवस्यन्दिभिः, सुरवन्दीनाम् = अपहृतदेवाङ्गनानां, चामरैः = चमरपुच्छव्यजनैः, वीज्यते = कृतपवनो विधीयते ।

समास—सम्यक् सुप्तः संसुप्तः (गति तत्पु०) । श्वासेन साधारणः श्वाससाधारणः (तृ० तत्पु०), श्वाससाधारणः अनिलः येषां तैः श्वाससाधारणानिलैः (वहु०) । वाष्पाणां सीकराः वाष्पसीकराः (ष० तत्पु०) वाष्पसीकरान् वर्षन्तीति तैः वाष्पसीकरवर्षिभिः (उपपद तत्पु०) । सुराणां वन्द्यः सुरवन्द्यः तासाम् सुरवन्दीनाम् (ष० तत्पु०) ।

व्याकरण—संसुप्तः—सम् + स्वप् + क्त, प्र० एक० । वर्षिभिः—वर्ष् + णिनि, वर्षिन्, तृ० वहु० । वीज्यते—वीज् + कर्मणि लट्, प्र० पु० एक० ।

अलङ्कार—पर्यायोक्त ।

हिन्दी अनुवाद—सुखपर्वक सोए हुए उस असुर पर उसके द्वारा बन्दी बनाई गईं देवताओं की स्त्रियाँ आँसुओं को गिराती हुई (पति विरह से तप्त) अपनी श्वासों के सदृश चँवरों से हवा करती हैं ।

विशेष—तारकासुर ने सुरस्त्रियों का वलात् अपहरण कर लिया फलतः प्रिय विरह के कारण अश्रुकणों से भीगी हुई आँखों वाली देवाङ्गनाएँ जब उसे पंखा झलती हैं तो उसकी हवा आर्द्र हो जाती है । ४२ ॥

उत्पाट्य मेरुशृङ्गाणि क्षुण्णानि हरितां खुरैः ।
आक्रीडपर्वतास्तेन कल्पिताः स्वेषु वेश्मसु ॥४३॥

सञ्जीविनी—उत्पाट्येति । तेन तारकेण हरितां सूर्याश्वानाम् । 'हरित् सूर्ये च सूर्याश्वे वर्णे च हरिते दिशि" इति विश्वः । खुरैः शफैः क्षुण्णानि चूर्ण-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तानि । एतेन तेषामत्यौन्नत्यं सूचितम् । मेरुशृङ्गाण्युत्पाटय स्वेषु वेश्मसु, 'वेश्मसु' इति बहुवचनेनास्य भुवनत्रयनिवासः सूचितः । आक्रीडन्त एष्विस्याक्रीडाः, ते च ते पर्वताः कल्पिताः कृताः ।

अन्वय—तेन हरितां खुरैः क्षुण्णानि मेरुशृङ्गाणि उत्पाटय स्वेषु वेश्मसु आक्रीडपर्वताः कल्पिताः ।

शब्दार्थ—तेन = उसके द्वारा । हरिताम् = सूर्य के घोड़ों के । खुरैः = खुरों से । क्षुण्ण = चूर्णित । मेरुशृङ्गाणि = मेरु पर्वत के शिखरों को । उत्पाटय = उखाड़ कर । स्वेषु = अपने । वेश्मसु = घरों में । आक्रीडपर्वताः = क्रीडा पर्वत, विहार पर्वत । कल्पिताः = बनाए गए हैं ।

संस्कृत टीका—तेन = तारकेण, हरिताम् = सूर्याश्वानाम्, खुरैः = शफैः, क्षुण्णानि = मर्दितानि, चूर्णितानि; मेरुशृङ्गाणि = सुवर्णमयानि हेमाद्रिशिखराणि, उत्पाटय = विदार्य, स्वेषु = निजेषु, वेश्मसु = अन्तःपुरेषु, आक्रीडपर्वताः = क्रीडागिरयः, कल्पिताः = निर्मिताः ।

समास—मेरोः शृङ्गाणि मेरुशृङ्गाणि (ष० तत्पु०) । आक्रीडाः च ते पर्वताः (कर्म०) ।

व्याकरण—क्षुण्णानि—क्षुद् + क्त, द्वि० बहु० । उत्पाटय—उत् + पाट + क्त्वा (= ल्यप्) ।

अलङ्कार—पर्यायोक्त ।

हिन्दी अनुवाद—उस (तारकासुर) ने सूर्य के घोड़ों के खुरों (के अघात) से चूर्णित सुमेरु पर्वत के शृंगों को उखाड़कर अपने भवन विहार-पर्वत बना लिया है ॥ ४३ ॥

मन्दाकिन्याः पयः शेषं दिग्गवारणमदाविलम् ।
हेमाम्भोरुहसस्यानां तद्वाप्यो धाम साम्प्रतम् ॥ ४४ ॥

सञ्जीविनी—मन्दाकिन्या इति । साम्प्रतं सम्प्रति मन्दाकिन्या भागीरथ्या दिग्वारणानां दिग्गजानां मदैराविलं कलुषं पयो जलमेव शिष्यत इति शेषं शिष्टम् । कर्मणि घञ्प्रत्ययः । 'त्रिष्वन्यत्रोपयुज्यते' इति नपुंसकत्वम् । तर्हि कनककमलानि क्व गतानीत्याह—हेमेति । हेमाम्भोरुहाण्येव सस्यानि तेषां तु

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तस्य तद्वाप्य एव धाम स्थानम् । सर्वाण्युत्पाट्य स्वदीर्घिकास्वेव प्रतिरोपितवानित्यर्थः ।

अन्वय—साम्प्रतं मन्दाकिन्याः दिग्वारणमदाविलं पयः शेषम् । हेमाम्भोरुहसस्यानां तद्वाप्यः धाम ।

शब्दार्थ—साम्प्रतम् = अब । मन्दाकिन्याः = गंगा का । दिग्वारणमदाविलम् = दिग्गजों के मद से मलिन । पयः = जल । शेषम् = बचा है । हेमाम्भोरुहसस्यानाम् = सुवर्ण कमलों के उपज के । तद्वाप्यः = उसके महल की बावलियाँ । धाम = स्थान (हैं) ।

संस्कृत टीका—साम्प्रतम् = अधुना, मन्दाकिन्याः = गङ्गायाः, दिग्वारणमदाविलम् = दिग्गजानां मदजलेन कलुषितम्, पयः = जलम्, शेषम् = अवशिष्टम्, हेमाम्भोरुहसस्यानाम् = स्वर्णकमलधान्यानाम्, तद्वाप्यः = तारकासुरस्य दीर्घिकाः, धाम = स्थानम् । (स्वर्गगङ्गायाः सुवर्णकमलान्युन्मूल्य स्ववापीषु प्रतिरोपितवान्, इत्याशयः) ।

समास—दिशां वारणाः दिग्वारणाः (ष० तत्पु), दिग्वारणानां मदाः दिग्वारणमदाः (ष० तत्पु०), दिग्वारणमदैः अविलम् दिग्वारणमदाविलम् तृ० तत्पु०) । हेम्नः अम्भोरुहाणि हेमाम्भोरुहाणि (ष० तत्पु०), हेमाम्भोरुहाणीव सस्यानि तेषाम्) हेमाम्भोरुहसस्यानाम् (कर्म०) । तस्य वाप्यः तद्वाप्यः (ष० तत्पु) ।

व्याकरण—साम्प्रतम्—सम्प्रति + अण् । अम्भोरुह—अम्भस् + रुह + क (इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः)

अलङ्कार—पर्यायोक्त ।

हिन्दी अनुवाद—अब तो दिग्गजों के मद-जल से कलुषित गंगाजल (ही) शेष बचा है । स्वर्ण-कमलों के उपज-स्थल तो अब उसके महल की बावलियाँ ही हैं ।

विशेष—स्वर्णकमल आकाशगङ्गा में उगते हैं । किंतु तारकासुर स्वर्गगङ्गा से उन कमलों को भी उखाड़ लाया है और उन्हें अपने महल के तालाबों मे लगा दिया है । आकाशगङ्गा में दिग्गजों की क्रीड़ा का उल्लेख मिलता है, अतः तारकासुर द्वारा स्वर्ण-कमलों को उखाड़ लेने से स्वर्गगङ्गा में दिग्गजों के मदजल से मलिन जल ही शेष बचा है । आशय यह है कि तारका-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सुर ने स्वर्ग तक आतंक मचा रखा है। 'आठ दिशओं में रहने वाले दिग्गजों के नाम हैं—

'ऐरावतः पुण्डरीको वामनः कुमुदोऽञ्जनः।
पुष्पदन्तः सार्वभौमः सुप्रतीकश्च दिग्गजाः॥'

पूर्व दिशा का ऐरावत, दक्षिणपूर्व (अग्नि-कोण) का पुण्डरीक, दक्षिण का वामन, दक्षिण-पश्चिम (नैऋत्य कोण) का कुमुद, पश्चिम का अञ्जन, उत्तर-पश्चिम (वायव्य) का पुष्पदन्त, उत्तर का सार्वभौम, पूर्वोत्तर (ईशान का) सुप्रतीक दिग्गज है॥ ४४॥

भुवनालोकनप्रीतिः स्वर्गिभिर्नानुभूयते।
खिलीभूते विमानानां तदापातभयात् पथि॥ ४५॥

सञ्जीविनी—भुवनेति। तस्य तारकस्यापातात् समापत्तेर्भयाद्विमानानां पथि खिलीभूते अप्रहतीभूते सति। "द्वे खिलाप्रहते समे" इत्यमरः। स्वर्गिभिर्देवैर्भुवनानामालोकने प्रीतिर्नानुभूयते।

अन्वय—तदापातभयाद् विमानानां पथि खिलीभूते सति स्वर्गिभिः भुवनालोकनप्रीतिः न अनुभूयते।

शब्दार्थ—तदापातभयाद्=उसके आक्रमण के डर से। विमानानाम्=विमानों के। पथि=मार्ग। खिलीभूते=रिक्त हो जाने पर। स्वर्गिभिः=देवगणों द्वारा। भुवनालोकनप्रीतिः=भुवनों के दर्शन का आनन्द। न अनुभूयते=अनुभूत नहीं होता।

संस्कृत टीका—तदापातभयात्=तारकाक्रमणभयात्, विमानानाम्=आकाशवाहनानाम्, पथि=अध्वनि गगने, इति यावत्, खिलीभूते=रिक्ततां गते सति, स्वर्गिभिः=देवैः, भुवनालोकनप्रीतिः=लोकानां वीक्षणे अनुरक्तिं, न अनुभूयते=न लभ्यते।

समास—तस्य आपातः तदापातः (ष० तत्पु०), तदापातात् भयम् तदापातभयाद् (ष० तत्पु०)। भुवानानां आलोकनम् भुवनालोकनम् (ष० तत्पु०), भुवनालोकने प्रीतिः भुवनालोकनप्रीतिः (स० तत्पु०)। अनुभूयते अनु+भू+कर्मणि लट् प्र० पु० एक०।

अलङ्कार—पर्यायोक्त।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हिन्दी अनुवाद—उस तारकासुर के आक्रमण के डर से विमानों का मार्ग रिक्त हो गया है (अतः) देवगण (विमानों में बैठकर सञ्चरण द्वारा) लोकों के दर्शन-सुख का अनुभव नहीं कर पाते।

विशेष—देवगण अपने-अपने विमानों में बैठकर आकाश में नित्य विहार करने के प्रेमी हैं। किन्तु उस महादैत्य से भयाक्रान्त होकर उन्होंने विचरण करना छोड़ दिया है और आत्मरक्षार्थ अपने-अपने भवनों में ही रहते हैं ॥४५॥

यज्वभिः सम्भृतं हव्यं विततेष्वध्वरेषु सः।
जातवेदोमुखान्मायी मिषतामाच्छिनत्ति नः ॥ ४६ ॥

सञ्जीविनी—यज्वभिरिति। यज्वभिर्विधिवदिष्टवद्भिः "यज्वा तु विधिनेष्टवान्" इत्यमरः। "सुयजोर्ङ्वनिप्" इति ङ्वनिप्प्रत्ययः। विततेष्वध्वरेषु यज्ञेषु सम्भृतं दत्तं हव्यं हविर्मायी मायावी। व्रीह्यादित्वादिनिप्रत्ययः। स तारको नोऽस्माकं मिषतां पश्यताम्। पश्यत्सु सत्स्वित्यर्थः। "षष्ठी चानादरे" इति षष्ठी। जातवेदा वह्निरेव मुखं यस्माज्जातवेदोमुखादाच्छिनत्ति। आक्षिप्य गृह्णातीत्यर्थः।

अन्वय—यज्वभिः विततेषु अध्वरेषु सम्भृतं हव्यं मायी सः नः मिषतां जातवेदोमुखाद् आच्छिनत्ति।

शब्दार्थ—यज्वभिः=विधिपूर्वक यज्ञ करने वालों के द्वारा। विततेषु=विस्तारपूर्वक किए जा रहे। अध्वरेषु=यज्ञों में। सम्भृतम्=हवि को। मायी=मायावी। नः=हमारे। मिषताम्=देखते-देखते। जातवेदोमुखात्=अग्नि देव के मुख से। आच्छिनत्ति=बलात ग्रहण कर लेता है।

संस्कृत टीका—यज्वभिः=यथाविधानं यजनकर्तृभिः, विततेषु=विस्तृतेषु, अध्वरेषु=यज्ञेषु, सम्भृतम्=एकत्रितम्, हव्यम्=आहुतिद्रव्यम्, मायी=मायावी, सः=तारकः, नः=अस्माकम्, मिषताम्=पश्यताम्, जातवेदोमुखात्=अग्निमुखात्, आच्छिनत्ति=बलादाकृष्य गृह्णाति।

समास—जातवेदा एव मुखं, तस्मात् जातवेदोमुखात् (कर्म०)।

व्याकरण—यज्वभिः—यज्+ङ्वनिप्, यज्वन्, तृ० बहु०। विततेषु वि+तन्+क्त, स० बहु०। मायी—माया+इनि, मायिन्+सु, प्र० एक०।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मिषताम्—मिष् + शतृ, ष० बहु०; यहाँ अनादर में षष्ठी का प्रयोग हुआ है।
आच्छिनत्ति—आ + च्छिद् + लट्, प्र० पु० एक०।

हिन्दी अनुवाद—यज्ञकर्ताओं द्वारा विधिपूर्वक किये गए यज्ञों में एकत्रित हवि को वह मायावी तारकासुर हमारे देखते-देखते अग्नि के मुख से हरण कर लेता है।

विशेष—अग्नि को जातवेदस् कहा जाता है, क्योंकि वह उत्पन्न हुए को तुरन्त प्राप्त कर लेता है। 'जातं सद्यो जातं विन्दति' अथवा उत्पन्न होकर वह सबको जान लेता है। अथवा उसे सब जान लेते हैं—जातं वेत्ति वेदयते वा। अग्नि को देवताओं का मुख कहा गया है, 'अग्निर्वै देवानां मुखम्'। देवताओं के निमित्त अग्नि में डाली गई आहुतियाँ उन्हें प्राप्त होती हैं। तारकासुर उन आहुतियों को भी नहीं छोड़ता है। उन्हें भी अग्नि के मुख से छीन लेता है ॥ ४६ ॥

उच्चैरुच्चैःश्रवास्तेन हयरत्नमहारि च।
देहबद्धमिवेन्द्रस्य चिरकालार्जितं यशः ॥ ४७ ॥

सञ्जीविनी—उच्चैरिति। किञ्चेति चार्थः। तेन तारकेणोच्चैरुन्नत उच्चैःश्रवा नाम हयो रत्नमिव हयरत्नमश्वश्रेष्ठः। "रत्नं श्रेष्ठे मणावपि" इति विश्वः। अस्य शुभ्रत्वादुत्प्रेक्षते—देहबद्धं बद्धदेहम्, मूर्तिमदित्यर्थः। आहिताग्न्यादित्वान्निष्ठायाः परनिपातः। चिरकालार्जितमिन्द्रस्य यश इव। अहार्यहृतम्।

अन्वय—तेन च उच्चैः उच्चैःश्रवाः हयरत्नं देहबद्धं चिरकालार्जितम् इन्द्रस्य यशः इव अहारि।

शब्दार्थ—उच्चैः = अतिश्रेष्ठ। उच्चैःश्रवा = इन्द्र का अश्व। हयरत्नम् = अश्वरत्न। देहबद्धम् = शरीरधारी। चिरकालार्जितम् = चिरकाल से अर्जित। यश इव = मानो यश हो। अहारि = हरण कर लिया।

संस्कृत टीका—तेन = तारकेण, उच्चैः = अतिश्रेष्ठः, उच्चैःश्रवाः = एतन्नामकः इन्द्राश्वः, हयरत्नम = अश्वश्रेष्ठः, देहबद्धम् = मूर्तिमानम्, चिरकालार्जितम् = चिरसञ्चितम्, इन्द्रस्य = देवेन्द्रस्य, यशः = कीर्ति इव, अहारि = अपनीतम्।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समास—उच्चैः श्रवः यस्य सः उच्चैःश्रवाः (बहु०)। हयः रत्नम् इव हयरत्नम् (कर्म०)। देहेन बद्धम् तद् (तृ० तत्पु०) देहबद्धम्। चिरं कालाः चिरकालाः (कर्म०), चिरकालैः अर्जितम् चिरकालार्जितम् (तृ० तत्पु०)।

व्याकरण—उच्चैःश्रवा—उच्चैःश्रवस् प्र० एक०। बद्धम्—बन्ध् + क्त, (नपुं०) प्र० एक०। अर्जितम्—अर्ज् + क्त, प्र० एक०। अहार्—हृ कर्मणि लुङ्, प्र० एक०।

अलङ्कार—उत्प्रेक्षा और अनुप्रास।

हिन्दी अनुवाद—उस (तारकासुर) ने अतिश्रेष्ठ अश्वों में रत्न (इन्द्र के घोड़े) उच्चैःश्रवा का जो (इन्द्र का) मानो चिरकाल से संचित साकार यश (सा) था, (उसका) हरण कर लिया।

विशेष—समुद्र-मन्थन के फलस्वरूप निकलने वाले चौदह रत्नों में से उच्चैःश्रवा नामक अश्व भी एक है। उच्चैःश्रवा का रंग श्वेत है और कवि-परम्परा में यश का वर्णन भी शुभ्र माना गया है। अतः कवि यहाँ उत्प्रेक्षा करता है कि तारकासुर ने उच्चैःश्रवा का अपहरण करके मानो इन्द्र के यश का ही अपहरण कर लिया है॥४७॥

> तस्मिन्नुपायाः सर्वे नः क्रूरे प्रतिहतक्रियाः।
> वीर्यवन्त्यौषधानीव विकारे सान्निपातिके॥४८॥

सञ्जीविनी—तस्मिन्निति। क्रूरे घातुके "नृशंसो घातुकः क्रूरः" इत्यमरः। तस्मिन्नसुरे नोऽस्माकं सर्वे उपायाः सन्निपातदोषत्रयस्य प्रकोपजे सान्निपातिके विकारे ज्वरादौ। "सन्निपाताच्च" इति वक्तव्याट्ठक्। वीर्यवन्ति सारवन्त्यौषधानीव प्रतिहतक्रियाः विफलप्रयोगा भवन्ति।

अन्वय—क्रूरे तस्मिन् नः सर्वे उपायाः सान्निपातिके विकारे वीर्यवन्ति औषधानि इव प्रतिहतक्रियाः भवन्ति।

शब्दार्थ—क्रूरे = नृशस। तस्मिन् = उस पर। नः = हमारे। सर्वे = सभी। उपायाः = उपाय। सान्निपातिके = वात, पित्त और कफ इन त्रिदोषों के समवाय से उत्पन्न विकार। विकारे = रोग में। वीर्यवन्ति = प्रतिकार में समर्थ। औषधानि इव = औषधियों की तरह। प्रतिहतक्रियाः = व्यर्थ हो जाती हैं।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संस्कृत टीका—क्रूरे = नृशंसे, तस्मिन् = तारकासुरे, नः = अस्माकम्, सर्वे = समस्ताः, उपायाः = उपक्रमाः, सान्निपातिके = त्रिदोषजन्ये, ज्वरादौ, विकारे = व्याधौ, वीर्यवन्ति = प्रभावयुक्तानि, औषधानि = भेषजानीव, प्रतिहृतक्रियाः = व्यर्थाः (भवन्ति)।

समास—प्रतिहृताः क्रिया येषाम् ते प्रतिहृतक्रियाः (बहु०)।

व्याकरण—सान्निपातिके—सम् + नि + पत् + ठक् (= इक), स० एक०। वीर्यवन्ति = वीर्य + मतुप्—वीर्यवत्, प्र० बहु०।

अलंकार—उपमा।

हिन्दी अनुवाद—उस क्रूर (तारकासुर) पर हम लोगों के सभी (साम, दाम, दण्ड और भेदरूपी चारों) उपाय उसी प्रकार विफल होते जाते हैं जिस प्रकार (वात-पित्त-श्लेषात्मक) सन्निपात ज्वर में शक्तिशाली औषधियाँ व्यर्थ हो जाती हैं।

विशेष—त्रिदोषज्वर अर्थात् सन्निपात-वात, पित्त और कफ इन तीनों के दोष से उत्पन्न होता है ॥४८॥

जयाशा यत्र चास्माकं प्रतिघातोत्थितार्चिषा।
हरिचक्रेण तेनास्य कण्ठे निष्कमिवार्पितम् ॥ ४९ ॥

सञ्जीविनी—जयेशेति। किञ्चेति चार्थः। नूनमनेन हरिचक्रेण वयं जेष्याम इति यत्र हरिचक्रेऽस्माकं जयाशा विजयाशंसा। आसीदिति शेषः। प्रतिघातेन प्रतिहत्योत्थितार्चिषोद्गततेजसा तेन हरिचक्रेण विष्णोः सुदर्शनेनास्य तारकस्य कण्ठे निष्कमुरोभूषणमर्पितमिवेत्युत्प्रेक्षा। स्वयमेव निष्कमिव स्थितमित्यर्थः। तारकशिरश्छेदाय हरिणा चक्रं त्यक्तं तदपि नष्टशक्ति जातमिति भावः। "साष्टे शते सुवर्णानां हेम्न्युरोभूषणे पले। दीनारेऽपि च निष्कोऽस्त्री" इत्यमरः।

अन्वय—यत्र च अस्माकं जयाशा, प्रतिघातोत्थितार्चिषा तेन हरिचक्रेण अस्य कण्ठे निष्कम् अर्पितम् इव।

शब्दार्थ—यत्र = जिस पर। अस्माकम् = हमलोगों की। जयाशा = विजय की आशा। प्रतिघातोत्थितार्चिषा = टकराहट से उत्पन्न चिनगारियों से

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

युक्त । हरिचक्रेण = विष्णु के (सुदर्शन) चक्र के द्वारा । अस्य कण्ठे = इसके गले में । निष्कम् = स्वर्णभूषण । अर्पितम् इव = मानो डाल दिया गया हो ।

संस्कृत टीका—यत्र = यस्मिन्, विष्णोः सुदर्शनचक्रे, अस्माकम् = सर्वेषां देवानाम्, जयाशा = विजयाशंसा, प्रतिघातोत्थितार्चिषा = प्रहारोद्गतज्वालया, तेन हरिचक्रेण = विजयाशालम्बभूतेन सुदर्शनाभिधेन विष्णुचक्रेण, अस्य = तारकासुरस्य, कण्ठे = ग्रीवायाम्, निष्कम् = स्वर्णाभरणम्, अर्पितम् इव = दत्तम् इव ।

समास—जयस्य आशा जयाशा (ष० तत्पु०) । प्रतिघातेन उत्थितम् प्रतिघातोत्थितम् (तृ० तत्पु०); प्रतिघातोत्थितम् अर्चिः यस्य तेन प्रतिघातोत्थितार्चिषा (बहु०) । हरेः चक्रं हरिचक्रम् तेन हरिचक्रेण (ष० तत्पु०) ।

व्याकरण—उत्थित—उद् + स्था + क्त । अर्पितम्—ऋ + पुक् + णि + क्त ।

अलङ्कार—उत्प्रेक्षा ।

हिन्दी अनुवाद—जिस (आयुध-विशेष) पर हमलोगों की विजय की आशा निर्भर थी, वह विष्णु का सुदर्शन चक्र (फेंके जाने पर), उस असुर के गले की टकराहट से उत्पन्न चिनगारियों से युक्त होकर ऐसा लगता है जैसे इस (तारकासुर) के गले में स्वर्णाभूषण की तरह डाल दिया गया हो ।

विशेष—भाव यह है कि अनेक महादैत्यों का वध करने वाला विष्णु का सुदर्शन चक्र भी तारकासुर पर प्रभावी न हो सका । उलटे उसके गले की शोभा में वृद्धि करने वाला हो गया । सुदर्शन चक्र जब तारक के गले में टकराया तो उससे चिनगारियाँ निकलने लगीं । कवि यहाँ उत्प्रेक्षा करता है कि मानो ये चिनगारियाँ उसके गले का स्वर्णाहार थीं । इससे यह भी व्यञ्जित होता है कि तारक का शरीर वज्रवत् कठोर था ।। ४९ ।।

तदीयास्तोयदेष्वद्य पुष्करावर्तकादिषु ।
अभ्यस्यन्ति तटाघातं निर्जितैरावता गजाः ।।५०।।

सञ्जीविनी—तदीयेति । अद्य सम्प्रति निर्जित ऐरावतो यैस्ते तथोक्ताः तस्य तारकस्येमे तदीया गजाः पुष्कराश्चावर्तकाश्च नामादयो येषां तेषु तोयदेषु मेघेषु तटाघातं वप्रक्रीडामभ्यस्यन्ति ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्वय—अद्य निर्जितैरावताः तदीयाः गजाः पुष्करावर्तकादिषु तोयदेषु तटाघानम् अभ्यस्यन्ति ।

शब्दार्थं—अद्य = आज। निर्जितैरावता = जिन्होंने ऐरावत पर विजय प्राप्त कर ली है। तदीयाः = उसके। गजाः = हाथी। पुष्पकरावर्तकादिषु = पुष्कर, आवर्तक आदि। तोयदेषु = बादलों में। तटाघातम् = दर्पजन्य खुजलीका शमन करने के लिए सूंड़ और दन्त आदि का प्रहार। अभ्यस्यन्ति = अभ्यास करते हैं !

संस्कृत टीका—अद्य = साम्प्रतम्, निर्जितः = पराजितः, ऐरावताः = ऐन्द्रो गजाः, तदीयाः = तारकासुरस्य, गजाः = हस्तिनः, पुष्करावर्तकादिषु = पुष्करावर्तकप्रभृतिनामकेषु, तोयदेषु मेघेषु, तटाघातम् = शुण्डागण्डशरीरादि-घर्षणरूपां वप्रलेखाम्, अभ्यस्यन्ति = आवर्तयन्ति ।

समास—निर्जितः ऐरावतः यैः ते निर्जितैरावताः (बहु०)। पुष्कराश्च आदयः येषाम् तेषु पुष्करावर्तकादिषु (बहु०)। आवर्तकाश्च तोयानि ददतीति तोयदाः (उपपद तत्पु०) तेषु तोयदेषु। तटे आघातः तटाघातः, तम् तटाघातम् (सं० तत्पु०) ।

व्याकरण—निर्जित—निर् + जि + क्त। तदीयाः—तद् + छ + (=ईय) —तदीय, प्र० बहु०। तोयदेषु—तोय + दा + क। अभ्यस्यन्ति—अभि + अस् + लट्, प्र० पु० बहु० ।

हिन्दी अनुवाद—आज जिन्होंने देवराज इन्द्र के गजश्रेष्ठ ऐरावतको भी विजित कर लिया है ऐसे उसके अत्यन्त बलशाली हाथी पुष्कर और आवर्तक आदि मेघों में, अपने दर्प की खुजली का शमन करने के लिए सूंड़ और दन्त आदि के प्रहार का अभ्यास करते हैं।

विशेष—(१) भाव यह है कि न केवल तारक अपितु उसके अधीनस्थ प्राणियों ने भी उत्पात मचा रखा है। तारकासुर के हाथियों ने पूर्व दिशा के स्वामी, इन्द्र के वाहन ऐरावत को पराजित कर दिया और स्वयं बल के दर्प से उन्मत्त होकर पुष्कर और आवर्तक आदि मेघों पर अपने सूंड़ों और दाँतों का प्रहार करके अपनी खुजली को शान्त करते हैं। (२) समुद्र-मन्थन के फल-स्वरूप निकले हुए चौदह रत्नों में ऐरावत भी एक है, जो इन्द्र का वाहन है। समुद्र से उत्पन्न होने के कारण इसका नाम ऐरावत पड़ा—'इरा आपः

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhahta eGangotri Gyaan Kosha

तद्वान् समुद्रः, तत्र भवः ऐरावतः (इरावान् + अण्)। (३) पुष्कर और आवर्तक—ये दोनों अत्यधिक वृष्टि करने वाले मेघों के कुल हैं। कहा जाता है कि, प्रलय काल में ये दोनों मेघ अपनी भीषण वृष्टि द्वारा पृथ्वी को जल से आप्लावित कर देते हैं ॥५०॥

तदिच्छामो विभो ! स्रष्टुं सेनान्यं तस्य शान्तये।
कर्मबन्धच्छिदं धर्मं भवस्येव मुमुक्षवः ॥५१॥

सञ्जीविनी— तदिति। तत्तस्मात्कारणात्। हे विभो ! स्वामिन् !, मोक्तुं भवं त्यक्तुमिच्छवो मुमुक्षवो विरक्ता भवस्य संसारस्य शान्तये निवृत्तये कर्मैव बन्धनस्तं छिनत्तीति कर्मबन्धच्छित् तं धर्ममिव। आत्मज्ञानहेतुभूतमिति शेषः। 'तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति' इति ज्ञानादेव मुक्तिः। तस्य तारकस्य शान्तये नाशाय। सेनां नयतीति सेनानीश्चमूपतिः। "सत्सूद्विष—" इत्यादिना क्विप्। तं सेनान्यं कञ्चित्स्रष्टुमिच्छामः, वयमिति शेषः।

अन्वय—तद् विभो ! मुमुक्षवः भवस्य शान्तये कर्मबन्धच्छिदं धर्मम् इव तस्य शान्तये सेनान्यं स्रष्टुम् इच्छामः।

शब्दार्थ—तद् विभो अतः हे प्रभो !, भवस्य = संसार की। शान्तये = निवृत्ति हेतु। कर्मबन्धच्छिदम् = कर्म जाल का विनाश करने वाले। धर्मम् = धर्म को। इव = समान। तस्य = उस (तारकासुर) को। सेनान्यम् = सेनापति को। स्रष्टुम् = सृष्ट करना। इच्छामः = चाहते हैं।

संस्कृत टीका—तत् = तस्मात्(कारणात्), विभो ! = हे प्रभो, मुमुक्षवः = विरक्ता = पुनर्जन्मपरित्यागाकाङ्क्षिणः, भवस्य = जगतः, शान्तये = विनिवृत्तये, कर्मबन्धच्छिदम् = कर्मपाशध्वंसकम्, धर्ममिव = सदाचरणमिव, तस्य = तारकस्य, शान्तये = विनाशाय, सेनान्यम् = सेनापतिम्, स्रष्टुम् = निर्मातुम्, इच्छामः = अभिलषामः।

समास—कर्म एव बन्धः कर्मबन्धः (मयूरव्यंसकादि कर्म०) कर्मबन्धं छिनत्तीति कर्मबन्धच्छित्, तम् कर्मबन्धच्छिदम् (उपपद त० पु०)।

व्याकरण—मुमुक्षवः—मुच् + सन् + उ, (सनाशंसभिक्ष उः), प्र० पु० बहु०। कर्मबन्धच्छिदम्—कर्मबन्धच्छिद + क्विप् + द्वि० एक०), सेनान्यम्—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सेना + नी + क्विप्, द्वि एक० । स्रष्टुम्—सृज् + तुमुन् । इच्छामः—इष्, लट्, उ० पु० बहु० ।

अलङ्कार—उपमा ।

हिन्दी अनुवाद—अतः हे प्रभो ! हम उस (तारकासुर) के विनाश के लिए सेनापति की उत्पत्ति की इच्छा करते हैं। जैसे मोक्षाभिलाषी जन संसार चक्र से निवृत्त होने के लिए कर्मजालों का विनाश करने वाले धर्म को चाहते हैं।

विशेष—शास्त्रों में कहा गया है कि ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होती—'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' । और निष्काम कर्म के सम्पादन से ही मनोविकारों का अन्त होता है तथा ज्ञानोपलब्धि होती है ॥५१॥

गोप्तारं सुरसैन्यानां यं पुरस्कृत्य गोत्रभित् ।
प्रत्यानेष्यति शत्रुभ्यो बन्दीमिव जयश्रियम् ॥५२॥

सञ्जीविनी—गोप्तारमिति । सुरसैन्यानानां देवतासेनानां गोप्तारं रक्षितारं यं सेनान्यं पुरस्कृतस्य पुरोधाय । 'पुरोऽव्ययम्' इति गतित्वात् "नमस्पुरसोर्गत्योः" इति सकारः । गां पृथ्वीं त्रायन्त इति गोत्रास्तान् भिनत्तीति गोत्राभदिन्द्रो जयश्रियं बन्दीमिव बन्दीकृतां स्त्रियमिव शत्रुभ्यः सकाशात् प्रत्यानेष्यति । तं स्रष्टुमिति पूर्वेण सम्बन्धः ।

अन्वय—सुरसैन्यानां गोप्तारं यं पुरस्कृत्य जयश्रियम् बन्दीम् इव शत्रुभ्यः प्रत्यानेष्यति ।

शब्दार्थ—सुरसैन्यानाम् = देवताओं की सेनाओं के। गोप्तारम् = रक्षक । यम् = जिस (सेनापति) को । पुरस्कृत्य = आगे रखकर । गोत्रभिद् = इन्द्र । जयश्रियम् = विजयश्री को । बन्दीमिव = बलपूर्वक अपहरण की गई स्त्री की तरह । शत्रुभ्यः = शत्रुओं से । प्रत्यानेष्यति = लौटा लायेंगे ।

संस्कृत टीका—सुरसैन्यानाम् = देवसेनानाम्, गोप्तारम् = रक्षकम्, त्रातारम्, यम् = सेनानाम्, पुरस्कृत्य = सेनाग्रे निधाय, गोत्रभित् = इन्द्रः, जयश्रियम् = विजयलक्ष्मीम्, बन्दीम् = बन्दीकृतां स्त्रियम्, इव, शत्रुभ्यः = रिपुभ्यः, प्रत्यानेष्यति = परावर्तयिष्यति ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समास—सुराणां सैन्याः सुरसैन्याः तेषाम् सुरसैन्यानाम् (ष० तत्पु०)। गोत्रान् भिनत्ति इति गोत्रभित् (उपपद तत्पु०)। जयस्य श्री! ताम् जयश्रियम् (ष० तत्पु०)।

व्याकरण—सैन्याः—सेनायां भवाः, सेना + ण्य। गोप्तारम्—गुप् + तृच्, द्वि० एक०। पुरस्कृत्य—पुरस् + कृ + क्त्वा (= ल्यप्)। गोत्रभित्—गोत्र + भिद + क्विप्, प्र० एक०। प्रत्यानेष्यति—प्रति + आ + नी + लृट्, प्र० पु० एक०।

अलङ्कार—उपमा।

हिन्दी अनुवाद—देवताओं की सेनाओं के रक्षक जिस (सनापति) को प्राप्त कर (देवराज़) इन्द्र बलपूर्वक अपहरण की हुई स्त्री के समान (उस असुर द्वारा) अधिकृत विजय श्री को वापस ले आयेंगे।

विशेष—(१) सेनापति का कार्य है अपने सैनिकों की देखभाल करना तथा उन्हें ऐसी रणनीति (सिखलाना जिससे वे अपनी रक्षा करते हुए अधिकाधिक शत्रु-सेना का संहार कर सकें। इस प्रकार वह सेना का रक्षक कहलाता है! (२) गोत्रभित् इन्द्र को कहते हैं। गोत्रं गोत्रान् वा भिनत्ति इति गोत्रभित्। 'गोत्र' शब्द के दो अर्थ हैं— १. पहाड़, २. गायों के बांधने का स्थान। कहा जाता है कि पुराकाल में पर्वतों के पंख हुआ करते थे। इन्द्र ने अपने वज्र से उनके पंखों को काटकर उन्हें स्थायी बना दिया। अतः इन्द्र को गोत्रभित् कहा जाता है। द्वितीय अर्थ के अनुसार पणि नामक दस्यु जाति ने एक बार देवगुरु बृहस्पति की गायें चुराकर उन्हें दुर्गम स्थानों में ले जाकर बाँध दिया। इन्द्र ने उन स्थानों के अवरोधों को नष्ट कर पणियों को पराजित किया, इस कारण भी इन्द्र गोत्रभित् कहलाते हैं ॥५२॥

वचस्यवसिते तस्मिन् ससर्ज गिरमात्मभूः।
गर्जितानन्तरां वृष्टिं सौभाग्येन जिगाय सा ॥ ५३ ॥

सञ्जीविनी—वचसीति। तस्मिन्बार्हस्पत्ये वचस्यवसिते परिसमाप्ते सति आत्मभूर्ब्रह्मा गिरं वाचं ससर्ज जगादेत्यर्थः। सा गीः सौभाग्येन मनोहरत्वेन "हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च" इत्युभयपदवृद्धिः। गर्जितादुर्गर्जितस्य वाऽनन्तरं

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रवृत्तां वृष्टिं जिगाय जितवती। गर्जितपरत्वाद्वृष्टेरिव तद्विज्ञापनफलत्वाद्गिरः सुभगत्वमिति भावः।

अन्वय—तस्मिन् वचसि अवसिते सति आत्मभूः गिरं ससर्ज। सा सौभाग्येन गर्जितानन्तरां वृष्टिं जिगाय।

शब्दार्थ—तस्मिन् = उस। वचसि = कथन। अवसिते सति = समाप्त होने पर। आत्मभूः = ब्रह्मा। गिरम् = वाणी को। ससर्ज = निःसृत किया अर्थात् बोले। सा = उस निःसृत वाणी ने। सौभाग्येन = (अपनी) रमणीया से। गर्जितानन्तराम् = गर्जन के पश्चात् होने वाली। वृष्टिम् = वर्षा को। जिगाय = जीत लिया।

संस्कृत टीका—तस्मिन् = बार्हस्पतये, वचसि = भाषिते, अवसिते सति = समाप्तिं गते सति, आत्मभूः = स्वयम्भूः, गिरम् = वाचम्, ससर्ज = जगाद, सा = वाणी, सौभाग्येन = मनोज्ञत्वेन माधुर्येण, गर्जितानन्तराम् = स्तनितस्य पश्चाद्वर्तिनीम्, वृष्टिम् = वर्षाम्, जिगाय = अजैषीत्।

समास—आत्मना भवतीति आत्मभूः (उपपद तत्पु०)। गर्जितस्य अनन्तरा गर्जितानन्तरा, ताम् (ष० तत्पु०) गर्जितानन्तराम्।

व्याकरण—आत्मभूः—आत्मभू + क्विप्। ससर्ज—सृज् + लिट्, प्र० पु० एक०। सौभाग्येन—सुभगस्य भावः—सुभग + ष्यञ्, तृ० एक। जिगाय = जि + लिट्, प्र० पु० एक०।

अलङ्कार—उपमा।

हिन्दी अनुवाद—उस (बृहस्पति के) कथन की समाप्ति पर ब्रह्मा बोले। (ब्रह्मा की) उस वाणी ने (अपने में स्थित) माधुर्य के द्वारा मेघ गर्जन के पश्चात् होने वाली वृष्टि (के स्वारस्य) को भी जीत लिया।

विशेष—जिस प्रकार बादलों की गम्भीर ध्वनि (गर्जन) के अनन्तर सबको आप्यायित करने वाली सुखकर प्रतीत होती है, उसी प्रकार देवगुरु बृहस्पति के द्वारा गम्भीर वाणी में तारकासुर के औद्धत्य का वर्णन करने के अनन्तर ब्रह्मा के वचन देवताओं के लिए अत्यन्त प्रीतिकर सिद्ध हुए ॥ ५३ ॥

सम्पत्स्यते वः कामोऽयं कालः कश्चित्प्रतीक्ष्यताम्।
न त्वस्य सिद्धौ यास्यामि सर्गव्यापारमात्मना ॥ ५४ ॥

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सञ्जीविनी—सम्पत्स्यत इति । अयं वो युष्माकं कामो मनोरथः सेनानीरूपः सम्पत्स्यते सेत्स्यति । कश्चित्कियानपि कालः प्रतीक्ष्यताम् । तु किन्तु तस्य सेनान्यः सिद्धौ सिद्धिविषये आत्मना स्वयं सर्गः सृष्टिरेव व्यापारस्तं न यास्यामि । नाहं स्रक्ष्यामीत्यर्थः ।

अन्वय—अयं वः कामः सम्पत्स्यते, कश्चित् कालः प्रतीक्ष्यतां, तु अस्य सिद्धौ आत्मना सर्गव्यापारं न यास्यामि ।

शब्दार्थ—अयम् = यह । वः = आप लोगों की । कामः = मनोकामना । सम्पत्स्यते = पूरी होगी । कश्चित् = कुछ । कालः = समय । प्रतीक्ष्यताम् = प्रतीक्षा करें । तु = किंतु । अस्य = इस (कार्य विशेष) की । सिद्धौ = सिद्धि में । आत्मना स्वयं । सर्गव्यापारम् = जन्म को । न यास्याामि = नहीं लूंगा ।

संस्कृत टीका—अयम् = एषः तारकासुरवधरूपः, वः = युष्माकम्, कामः = मनोरथः, सम्पत्स्यते = सिद्धिं यास्यति, कश्चित् = कियान्, कालः = समयः, प्रतीक्ष्यताम् = प्रतिपाल्यताम्, अस्य = मनोरथ, सिद्धौ = सिद्धिविषये, आत्मना = स्वयम्, सर्गव्यापारम् = सर्जनक्रियाम्, न यास्यामि = न व्रजिष्यामि । तारकासुरवधहेतोर्नाहमुत्पत्स्ये इति भावः ।

समास—सर्ग एव व्यापारः, तम् सर्गव्यापारम् (मयूरव्यंसकादि कर्म०) ।

व्याकरण—सम्पत्स्यते—सम् + पद + लृट्, प्र० पु० एक० । प्रतीक्ष्यताम्—प्रति + ईक्ष् + कर्मणि लोट्, प्र० पु० एक० । यास्यामि—या + लृट्, उ० पु० एक० ।

हिन्दी अनुवाद—आप लोगों की यह इच्छा पूरी होगी किंतु (आप सब) कुछ काल की प्रतीक्षा कीजिए । इस कार्य की सिद्धि हेतु मैं स्वयं जन्म धारण नहीं करूँगा ।

विशेष—जब-जब दैत्यों और राक्षसों का अत्याचार अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है तब-तब परमेश्वर ने अवतार लेकर उनका वध किया है । कितु इस बार ब्रह्मा ने कहा कि तारकासुर के वध-हेतु मैं स्वयं अवतार नहीं लूँगा, इसका कारण उन्होंने अगले श्लोक में बताया है ॥ ५४ ॥

इतः स दैत्यः प्राप्तश्रीर्नेत एवार्हति क्षयम् ।
विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम् ॥ ५५ ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सञ्जीविनी--कुत इत्याशङ्क्याह—इत इति। इतो मत्त एव प्राप्तश्रीर्लब्धोदयः स दैत्यस्तारकासुरः इतो मत्त एव क्षयं नाशं नार्हति। तथा हि—अन्यो वृक्षस्तावदास्ताम्। विषस्य वृक्षो विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य कुतश्चित्कारणात् सम्यग्वर्धयित्वा स्वयं छेत्तुमसाम्प्रनमनर्हः। 'असाम्प्रतम्' इत्यनेन निपातेनाभितत्वाद् वृक्ष इति द्वितीयान्तो न भवति, अनभिहिते कर्मणि द्वितीयानभिधानात्। यथाऽऽह वामनः—'निपातेनाप्यभिहिते कर्मणि न विभक्तिः, परिगणनस्य प्रायिकत्वात्।' इति।

अन्वय--इतः एव प्राप्तश्रीः सः दैत्यः इत. एव क्षयं न अर्हति। विषवृक्षः अपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुम् असाम्प्रतम्।

शब्दार्थ--इतः = इधर से अर्थात् मेरी ओर से। एव = ही। प्राप्तश्रीः = उन्नति को प्राप्त। सः दैत्यः = वह दैत्य। इत एव = इधर से ही अर्थात् मेरी ओर से ही। क्षयम् = विनाश को। न अर्हति = प्राप्त करने योग्य नहीं है।

संस्कृत टीका—इतः = मत्सकाशात्, प्राप्तश्रीः = लब्धोदयः, सः दैत्यः = सः दानवः तारकासुरः, इतः एव = मत्तः एव, क्षयम् = विनाशम्, न अर्हति = न अपेक्षते, प्राप्तुं योग्यो न भवति। विषवृक्ष = विषतरुः, संवर्ध्य = वर्धयित्वा, स्वयम् = स्वयमेव, छेत्तुम् = कर्तितुम् विनाशयितुम्, असाम्प्रतम् = अयुक्तम्।

समास--प्राप्ता श्रीर्येन सः प्राप्तश्रीः (बहु०)। विषस्य वृक्षः विषवृक्षः (ष० तत्पु०)। न साम्प्रतम् असाम्प्रतम् (नञ् तत्पु०)।

व्याकरण--इतः—इदम् + तसिल्--तसिल् प्रत्यय का प्रयोग पञ्चमी के अर्थ में होता है। संवर्ध्य—सम् + वृध् + क्त्वा (= ल्यप्)।

अलङ्कार--अर्थान्तरन्यास।

हिन्दी अनुवाद--मुझसे ही उस दैत्य ने इस प्रचण्ड उत्कर्ष को प्राप्त किया है अत एव वह मेरे द्वारा ही विनष्ट नहीं हो सकता। अपने द्वारा भली प्रकार से बढ़ाये हुए विषवृक्ष को भी अपने ही हाथों काटना ठीक नहीं है।

विशेष—ज्ञातव्य है कि तारकासुर के उग्र तप से प्रसन्न होकर स्वयं ब्रह्मा ने ही उसे अभिलषित वर प्रदान किया था। अतः ब्रह्मा के कहने का आशय यह है कि तारकासुर का जो अभ्युदय है वह मेरे द्वारा प्रदत्त वर का ही परिणाम है। अतएव मेरे द्वारा उसका विनाश अनुचित है। अपने द्वारा लगाये

CC-0. Vasishtha Tripathi Collections. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गये अनिष्टकारी विषवृक्ष को भी स्वयं ही काटना अनुचित है; क्योंकि कोई पिता अपने पुत्र का अनिष्ट नहीं चाहता ॥ ५५ ॥

वृतं तेनेदमेव प्राङ् मया चास्मै प्रतिश्रुतम् ।
वरेण शमितं लोकानलं दग्धुं हि तत्तपः ॥ ५६ ॥

सञ्जीविनी--वृतमिति । प्राक् पूर्वं तेनासुरेणेदमेव देवैरवध्यत्वमेव वृतं प्रार्थितम् । मया चास्मै तारकाय प्रतिश्रुतं प्रतिज्ञातम् । "प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्ता" इति सम्प्रदानत्वाच्चतुर्थी । कर्तव्यं चैतदित्याह—लोकान् दग्धुमलं शक्तम् । "पर्याप्तिवचनेष्वलमर्थेषु" इति तुमुन्प्रत्ययः । तस्य तपस्तत्तपो वरेण वरदानेन शमितं हि मयेति शेषः ।

अन्वय—प्राक तेन इदम् एव वृतम्, मया अस्मै प्रतिश्रुतं हि लोकान् दग्धुम् अलं तत्तपः वरेण शमितम् ।

शब्दार्थ—प्राक् = पूर्व (काल) में । तेन = उस (तारकासुर) ने । इदमेव = यही । वृतम् = माँगा था । मया = मैंने । अस्मै = इसको । प्रतिश्रुतम् = वचन दिया । हि = क्योंकि । लोकान् = लोकों को । दग्धुम् = दग्ध करने के लिए । अलम् = समर्थ । तत्तपः = उसके तपोबल को । वरेण = वरदान के द्वारा । शमितम् = शमित किया ।

संस्कृत टीका—प्राक् = पूर्वम्, मत्साक्षात्कारावसरे, तेन = तारकेण, इदमेव = सुरैरवध्यत्वमेव, वृतम् = याचितम्, मया = ब्रह्मणा, अस्मै = तारकाय, प्रतिश्रुतम् = प्रतिज्ञातम्, लोकान् = विश्वान्, दग्धुम् = भस्मीकर्तुम्, अलम् = शक्तम्, तत्तपः = तारकासुरस्य तपः, वरेण = वरप्रदानेन, शमितम् = शान्तं कृतम् ।

समास--तस्य तपः तत्तपः (ष० तत्पु०) ।

व्याकरण – वृत्तम्--वृ + क्त, प्र० एक० । प्रतिश्रुतम्--प्रति + श्रु + क्त, प्र० एक० । दग्धुम् -दह् + तुमुन् । शमितम--शम् + णि + क्त, प्र० एक० ।

अलङ्कार--काव्यलिङ्ग ।

हिन्दी अनुवाद—पहले उसने मुझसे यही (वर) माँगा था (कि देवगण उसका वध न कर सकें) और मैंने उसे वह वरदान दे दिया था । नहीं तो वह अपने तप की अग्नि से विश्व को भस्मसात् कर सकता था (अतएव उसके तपरूपी अग्नि को मैंने इस) वरदान के द्वारा शान्त कर दिया ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विशेष—ब्रह्मा के कहने का आशय यह है कि तारकासुर को वरदान देकर मैंने जगत् को भयंकर सर्वनाश से बचा लिया, क्योंकि अभिलषित वर पाकर वह तपस्या से विरत हो गया। अन्यथा उसकी तपस्या इतनी उग्र थी कि वह अपने तपोबल से सम्पूर्ण लोकों को नष्ट कर सकता था ॥ ५६ ॥

संयुगे सांयुगीनं तमुद्यतं प्रसहेत कः।
अंशादृते निषिक्तस्य नीललोहितरेतसः ॥ ५७ ॥

सञ्जीविनी—संयुग इति। संयुगे युद्ध उद्यतं व्याप्रियमाणम्। संयुगे साधु सांयुगीनम्। "प्रतिजनादिभ्यः खञ्" इति खञ्प्रत्ययः। तं तारकं निषिक्तस्य क्वचित्क्षेत्रे क्षरितस्य। 'नीलः कण्ठे लोहितश्च केशेष्विति नीललोहित इति पुराणम्' इति स्वामी। तस्य नीललोहितस्य धूर्जटे रेतसः शुक्रस्यांशादृतेऽशं विनाऽन्यः कः प्रसहेताभिभवेत् ? 'प्रसहनमभिभवः' इति वृत्तिकारः।

अन्वय—संयुगे उद्यतं सांयुगीनं तं निषिक्तस्य नीललोहितरेतसः अंशात् ऋते कः प्रसहेत।

शब्दार्थ—संयुगे = युद्ध में। उद्यतम् = उद्योगी। सांयुगीनम् = युद्ध-निपुण। तम् = उस (तारकासुर) को। निषिक्तस्य = (किसी क्षेत्र में) आहित। नीललोहितरेतसः = शिव के वीर्य के। अंशात् = अंश के। ऋते बिना। कः = कौन। प्रसहेत = सामना कर सकता है।

संस्कृत टीका—संयुगे = युद्धे, उद्यतम् = उद्योगिनम्, सांयुगीनम् = युद्ध-निपुणम्, तम् = तारकम्, निषिक्तस्य = क्षरितस्य, नीललोहितरेतसः = शिव-वीर्यस्य, अंशाद् ऋते = अंशं विना, कः प्रसहेत = कोऽभिभवेत्, कः क्षन्तुं पारयेत् ? न कोऽपि इत्यर्थः।

समास—नीलश्चासौ लोहितश्चेति नीललोहितः (कर्म०), नीललोहितस्य रेतः, तस्मात् नीललोहितरेतसः (ष० तत्पु०)।

व्याकरण—उद्यतम्—उद् + यम् + क्त, द्वि० एक०। सांयुगीनम्—संयुग + ख (= ईन)। निषिक्तस्य—नि + सिञ्च + क्त, ष० एक०। अंशाद् ऋते—यहाँ ऋते के योग में पंचमी का प्रयोग हुआ है। प्रसहेत—प्र + सह् + विधिलिङ्, प्र० पु० एक०।

अलङ्कार—काकुवक्रोक्ति।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हिन्दी अनुवाद—युद्धोद्यत और युद्ध निपुण उस (तारकासुर) का किसी क्षेत्र में आहृत (भगवान्) शंकर के वीर्य से जायमान (शिव के) अंश के बिना कौन व्यक्ति सामना कर सकने में समर्थ हो सकता है ॥५७॥

स हि देवः परं ज्योतिस्तमःपारे व्यवस्थितम् ।
परिच्छिन्नप्रभावर्द्धिर्न मया न च विष्णुना ॥५८॥

सञ्जीविनी—कथमसावीदृक्शक्तिरित्याह—स इति । स देवो नीललोहितस्तमसः पारे परतो व्यवस्थितं तमोगुणातीतं परं ज्योतिः परमात्मा हि । अत एव मया परिच्छिन्नप्रभावर्द्धिरवगाढमहिमातिशयो न भवति, तथा विष्णुना च न, अतस्तस्यासाध्यं नास्तीत्यर्थः ।

अन्वय—हि सः देवऽ तमः पारे व्यवस्थितं परं ज्योतिः । मया विष्णुना च परिच्छिन्नप्रभावर्द्धिः न ।

शब्दार्थ – हि = क्योंकि । सः देवः = वह (महान्) देव अर्थात् शिव । तमःपारे = तमोगुणातीत । व्यवस्थिम् = प्रतिष्ठित । पर ज्योतिः = सर्वोत्कृष्ट तेज (हैं) । परिच्छिन्नप्रभावर्द्धि = जिसकी महिमामय सामर्थ्य का ज्ञान हो ।

संस्कृत टीका—सः देवः = तथोक्तः देवः, तमः पारे = तमोगुणातीतः, व्यवस्थितम् = प्रतिष्ठितम्, परम् = सर्वोत्कृष्टम्, ज्योतिः = तेजः प्रकाशरूपः (अस्ति) । मया = ब्रह्मणा, विष्णुना = नारायणेन च, परिच्छिन्नप्रभावर्द्धिः = ज्ञातमहिमातिशयः, न = न भवतीति शेषः ।

समास –तमसः पारम् तमः पारम् तस्मिन् तमःपारे (ष० तत्पु०) । विशेषेण अवस्थितम् व्यवस्थितम् (प्रादि तत्पु०), प्रभावस्य ऋद्धिः प्रभावर्द्धिः (ष० तत्पु०), परिच्छिन्नप्रभावर्द्धिः बहु० । ।

व्याकरण—व्यवस्थितम्—वि + अव + स्था + क्त, प्र० एक० । परिच्छिन्नपरि + छिद् + क्त ।

अलङ्कार—उदात्त ।

हिन्दी अनुवाद—क्योंकि वह देव (अर्थात् भगवान् शिव) तमोगुण से परे परम प्रकाश रूप परमात्मा हैं (अतएव) मेरे और विष्णु के द्वारा उनकी अतिशय महिमा का ज्ञान नहीं हो सकता ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विशेष--भगवान् शंकर सनातन ज्योति हैं, सीमाहीन हैं और ज्ञान-स्वरूप हैं। ब्रह्मा के इस प्रकार कहने का आशय यह है कि तारक का वध करने में मात्र शिव ही समर्थ हैं ।। ५८ ।।

उमारूपेण ते यूयं संयमस्तिमितं मनः ।
शम्भोर्यतध्वमाक्रष्टुमयस्कान्तेन लोहवत् ।।५९।।

सञ्जीविनी—सम्प्रति तदंशोत्पत्तावुपायं दर्शयति—उमेति । ते कार्यार्थिनो यूयं संयमस्तिमितं समाधिनिश्चलं शम्भोर्मन उमारूपेणोमासौन्दर्येण "रूपं स्वभावे सौन्दर्ये नाणके पशुशब्दयोः । ग्रन्थावृत्तौ नाटकादावाकारश्लोकयोरपि" इति विश्वः । अयस्कान्तेन मणिविशेषेण । "कस्कादिषु च" इति सकारः । लोहवदयोधातुमिव । "तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः" इति वतिप्रत्ययो मृग्यः । आक्रष्टुमाहर्तुं यतध्वमुद्युक्ता भवत ।

अन्वय--ते यूयं संयमस्तिमितं शम्भोः मनः उमारूपेण अयस्कान्तेन लोहवत आक्रष्टुं यतध्वम् ।

शब्दार्थ—संयमस्तिमितम् = समाधिनिश्चल । शम्भोः = शंकर के । मनः = मनको । उमारूपेण = पार्वती के रूप के द्वारा । लोहवत् = लोहे की तरह । आक्रष्टुम् = आकर्षित करने के लिए । यतध्वम् = (आप लोग) प्रयत्न करें ।

संस्कृत टीका—ते = सेनानीकामयमानाः, यूयम् = भवन्तः, देवाः, संयमस्तिमितम् = समाधिनिश्चलम्, वाह्यवृत्तिनिरोधात् स्थिरं वा, शंभोः = शिवस्य, मनः = अन्तःकरणम्, उमारूपेण = पार्वतीसौन्दर्येण, अयस्कान्तेन = चुम्बकमणिना, लोहवत = अयोधातुमिव, आक्रष्टुम् = समाक्रष्टं, आकर्षितुं वा, यतध्वम् = यत्नशीलो भवत ।

समास--संयमेन स्तिमितम् (तृ० तत्पु०) संयमस्तिमितम् । उमायाः रूपम्, तेन उमारूपेण (ष० तत्पु०) ।

व्याकरण--लोहवत् = लोहमिव--यहाँ द्वितीया के अर्थ में वति प्रत्यय का प्रयोग हुआ है किन्तु "तत्र तस्येव", "तेन तुल्य क्रिया चेद्वतिः" इस नियम के अनुसार सप्तमी और तृतीया के अर्थ में 'वति' प्रत्यय प्रयुक्त होता है ।

अलङ्कार—उपमा ।

हिन्दी अनुवाद—(अतः सेनानी की इच्छा रखने वाले आप सब लोग) समाधि से अचंचल भगवान् शंकर के मन को पार्वती के (अतिशय) सौन्दर्य से

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उसी प्रकार आकर्षित करने के लिए प्रयत्न कीजिए, जैसे चम्बक से लोहे को आकर्षित किया जाता है।

विशेष—ज्ञातव्य है कि शिव की पूर्वपत्नी सती यक्ष प्रजापति की कन्या थीं। एक वार दक्ष ने वृहद् यज्ञ का आयोजन किया किन्तु अपने जामाता शिव को आमंत्रित नहीं किया। पिता द्वारा किये जाने वाले यज्ञ की बात सुनकर सती ने यज्ञ में जाने का हठ किया, तब शिव ने अपने गणों के साथ सती को भेज दिया। वहाँ पहुँचकर जब सती ने देखा कि यज्ञ-भूमि में शिव के लिए कोई स्थान नहीं है तब इस अपमान से खिन्न होकर उन्होंने योगाग्नि के बल से यज्ञ-भूमि में ही अपने शरीर को दग्ध कर दिया। तभी से शिव समाधिस्थ हो गये थे। वही सती दूसरे जन्म में हिमालय की कन्या पार्वती हुईं। यहाँ ब्रह्मा देवताओं से कहते हैं कि समाधिस्थ शिव को पार्वती ही आकृष्ट कर सकती हैं। अतः आप लोग ऐसा प्रयत्न करें कि शिव का मन पार्वती पर आसक्त हो सके। जिस प्रकार चुम्बक लोहे को खींचने में समर्थ होता है, उसी प्रकार पार्वती का सौन्दर्य ही शिव के अविचल मन को विचलित कर सकता है। प्रस्तुत श्लोक में पार्वती के सौन्दर्य की उपमा चुम्बक से तथा निश्चल मन वाले शिव की उपमा स्थिर लोहे से दी गयी है ॥५९॥

उभे एव क्षमे वोढुमुभयोर्बीजमाहितम्।
सा वा शम्भोस्तदीया वा मूर्तिर्जलमयी मम ॥६०॥

सञ्जीविनी--न च गत्यन्तरमस्तीत्याह—उभे इति। उभयोः शम्भोर्मम चाहितं निषिक्तं बीजं तेजो वोढुं सा वोमा शम्भोरष्टमूर्तेस्तस्येयं तदीया जलमयी मूर्तिर्वा मम, उभे एव क्षमे, न तृतीयेत्यर्थः। 'वा' शब्दो द्वन्द्वार्थे न त्वन्यार्थे। एतदेवोदाहृत्येत्थमेव व्याख्यातं गणव्याख्याने। अत्र दीपकालङ्कारः। प्राकरणिकयोरुमामहेश्वरयोरप्राकरणिकयोर्ब्रह्मजलमूर्त्योश्चौपम्यस्य गम्यत्वात्। यथाह भोजराजः—प्रस्तुतानामप्रस्तुतानां चौपम्यस्य गम्यत्वे दीपकम्। न चेयं तुल्ययोगिता, तस्याः केवलप्रस्तुतविषयत्वेन केवलाप्रस्तुतविषयत्वेन चोत्थानादिति।

अन्वय—उभयोः शम्भोः मम वा आहितं बीजं वोढुं (क्रमेण) शम्भोः सा वा मम च तदीया जलमयी मूर्तिः वा उभे एव क्षमे।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शब्दार्थ—उभयोः=दोनों के। शम्भोः=शिव के। मम=मेरे। आहितम्=निषिक्त। बीजम्=वीर्य को। वोढुम्=धारण करने में। (क्रमेण=क्रमशः)। शम्भोः=शिव की। सा=वह पार्वती। मम च=और मेरी। जलमयी=जल की। मूर्तिः=आकृति। उभे एव=दोनों ही। क्षमे=समर्थ हैं।

संस्कृत टीका—उभयोः=द्वयोः, शम्भोः=शिवस्य, मम वा=ब्रह्मणः वा, आहितम्=निक्षिप्तम्, बीजम्=वीर्यम्, वोढुम्=धारयितुम्, (क्रमेण=यथाक्रमम्,) शम्भोः=शिवस्य, सा वा=पार्वती वा, मम च=ब्रह्मणः, तदीया =शिवसम्बन्धिनी, जलमयी=जलस्वरूपा, मूर्तिः=आकृतिः, उभे=द्वे, एव, क्षमे=शक्ते समर्थे वा। मम तेजो वोढुं जलमूर्तिः, शिवस्य तेजो धारयितुं उमा इति द्वे एव द्वयोस्तेजो धारयितुं समर्थे, नान्या काऽपि योषिद् द्वयोस्तेजो धारयितुं समर्था इत्यर्थः।

व्याकरण—आहितम्—आ+धा+क्त, द्वि० एक०। वोढुम्—वह+तुमुन्। तदीया—तद्+छ (=ईय)+टाप्।

अलङ्कार—दीपक।

हिन्दी अनुवाद—शिव अथवा मेरे वीर्य को धारण करने के लिए दोनों ही सक्षम हैं—शंकर-वीर्य के धारणार्थ पार्वती और मेरे (अर्थात् मुझ ब्रह्माके) वीर्य को धारण करने के लिए मेरी जलस्वरूपा मूर्ति ॥६०॥

तस्यात्मा शितिकण्ठस्य सैनापत्यमुपेत्य वः।
मोक्ष्यते सुरवन्दीनां वेणीर्वीर्यविभूतिभिः ॥६१॥

सञ्जीविनी—तस्येति। तस्य शितिकण्ठस्याष्टमूर्तेरात्मा पुत्र इत्यर्थः, "आत्मा वै पुत्रनामासि" इति श्रुतेः। वो युष्माकं सेनापतेर्भावः सैनापत्यम्। "पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्" इति यक्प्रत्ययः। उपेत्य प्राप्य वीर्यविभूतिभिः शौर्यसम्पत्तिभिः सुरवन्दीनां वेणीर्मोक्ष्यते विस्रंसयिष्यति। तारकासुरं हनिष्यतीति भावः।

अन्वय—तस्य शितिकण्ठस्य आत्मा वः सैनापत्यम् उपेत्य वीर्यविभूतिभिः सुरवन्दीनां वेणीः मोक्ष्यते।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शब्दार्थ—तस्य = उनका । शितिकण्ठस्य = भगवान् शंकर का । आत्मा = आत्मस्वरूप पुत्र । वः = आप लोगों के । सैनापत्यम् = सेनापतित्व को । उपेत्य = ग्रहण करके । वीर्यविभूतिभिः = बल सम्पत्ति के द्वारा । सुरवन्दीनाम् = बलपूर्वक हरण करके बन्दी बनाई गई देवाङ्गनाओं के । वेणीः = केशपाशों को । मोक्ष्यते = सुलझायेगा ।

संस्कृत टीका—तस्य शितिकण्ठस्य = तस्य महादेवस्य, आत्मा = आत्मभूतः पुत्रः, वः = युष्माकम्, सैनापत्यम् = सेनापतित्वम्, उपेत्य = लब्ध्वा, वीर्यविभूतिभिः = शौर्यसमृद्धिभिः ओजसामर्थ्यैः, सुरवन्दीनाम् = वन्दीकृतदेवाङ्गनानाम्, वेणीः = केशग्रथितरचनाः, मोक्ष्यते = विस्रंसयिष्यति ।

समास—शितिः कण्ठः यस्य सः, तस्य शितिकण्ठस्य (बहु०) । सेनायाः पतिः सेनापतिः (ष० तत्पु०), तस्य भावः तत् सैनापत्यम् । वीर्यस्य विभूतयः वीर्यविभूतयः ताभिः वीर्यविभूतिः (ष० तत्पु०) । सुराणां वन्द्यः सुरवन्द्यः, तासां सुरवन्दीनाम् (ष० तत्पु०) ।

व्याकरण—सैनापत्यम्—सेनापति + यक् । उपेत्य—उप + इ + क्त्वा (= ल्यप्) । मोक्ष्यते = मुच् + लृट्, प्र० पु० एक० ।

अलङ्कार—पर्यायोक्त ।

हिन्दी अनुवाद—(भगवान्) शंकर का (आत्मस्वरूप वह) पुत्र आपके सेनापतित्व को ग्रहण करके (अपनी) परमशौर्य सम्पत्ति से (तारकासुर के द्वारा) बलपूर्वक हरण की हुई देवताओं की स्त्रियों के (उलझे) केशपाशों को (भली प्रकार) सुलझायेगा ।

विशेष—इस श्लोक का आशय यह है कि तारकासुर के वध के पश्चात् सुराङ्गनाएँ अपने बन्दी जीवन से मुक्त होंगी । फलतः प्रिय-विरह की समाप्ति पर उन्हें अपना नूतन शृङ्गार करने का अवसर मिलेगा ॥६१॥

इति व्याहृत्य विबुधान्विश्वयोनिस्तिरोदधे ।
मनस्याहितकर्तव्यास्तेऽपि देवा दिवं ययुः ॥६२॥

सञ्जीविनी—इतीति । विश्वस्य योनिः कारणम् । "योनिः स्त्रीणां स्थानभेदे कारणे तान्त्रिके पणे" इति वैजयन्ती । विबुधान् सुरानिति व्याहृ-

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्याभिधाय तिरोदधेऽन्तर्हितवान् । ते देवा अपि मनस्याहितं कर्तव्यं यैस्ते तथोक्ताः सन्तो दिवं स्वर्गं ययुः प्रापुः ।

अन्वय—विश्वयोनिः विबुधान् इति व्याहृत्य तिरोदधे, ते देवाः अपि मनसि आहितकर्तव्याः दिवं ययुः ।

शब्दार्थ—विश्वयोनिः = विश्व के कारणभूत अर्थात् ब्रह्मा । विबुधान् = देवगणों के प्रति । इति = ऐसा । व्याहृत्य = कहकर । तिरोदधे = तिरोभूत हो गये । ते देवा अपि = वे देवगण भी । मनसि = मन में । आहितकर्तव्याः = कर्तव्य को (ध्यान में) रखकर । दिवम् = देवलोक को । ययुः = चल पड़े ।

संस्कृत टीका—विश्वयोनिः = संसारकारणभूतो ब्रह्मा, विबुधान् = सुरान्, इति = एवम्, व्याहृत्य = अभाष्य, तिरोदधे = अन्तर्दधौ । ते देवा अपि = तत्र गता अमराश्च, मनसि = चित्ते, आहितकर्तव्याः = कृतसङ्कल्पाः, दिवम् = देवलोकम्, ययुः = जग्मुः ।

समास—विश्वस्य योनिः विश्वयोनिः (ष० तत्पु०) । विशेषेण बुध्यन्ते इति विबुधाः, तान् विबुधान् (प्रादि तत्पु०) । आहितं कर्तव्यं यैः ते आहितकर्तव्याः (बहु०) ।

व्याकरण—व्याहृत्य—वि + आ + हृ + क्त्वा (= ल्यप्) । तिरोदधे—तिरस् + धा + लिट्, प्र० पु० एक० ।

हिन्दी अनुवाद—देवगणों से ऐसा कहकर ब्रह्मा अन्तर्धान हो गये । वे देवगण भी अपने कर्तव्य को (दृष्टि में) रखकर देवलोक को चल पड़े ।

विशेष–(१) ब्रह्मा सृष्टि की रचना करने वाले हैं । सम्पूर्ण जगत् ब्रह्मा के द्वारा उत्पन्न हुआ है । अतः वे जगत् के कारणभूत हैं । इसीलिए प्रस्तुत श्लोक में कवि ने उन्हें विश्वयोनि कहा है । (२) दिव्य शक्तियों से युक्त होने के कारण देवता सभी को बाह्य एवं आन्तरिक रूप से जान जाते हैं अतः उन्हें विबुधान् कहा गया है । (३) ब्रह्मा के द्वारा निर्दिष्ट कर्तव्य को अर्थात् पार्वती के प्रति शिव को आकृष्ट करने के कार्य को मन में रखकर, आश्वस्त होकर देवगण स्वर्ग लोक लौट गये ॥ ६२ ॥

तत्र निश्चित्य कन्दर्पमगमत्पाकशासनः ।
मनसा कार्यसंसिद्धौ त्वराद्विगुणरंहसा ॥ ६३ ॥

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सञ्जीविनी—तत्रेति। पाको नाम कश्चिदसुरस्तस्य शासन इन्द्रस्तत्र हर चित्ताकर्षणकृत्ये कन्दर्पं निश्चित्य, साधकत्वनात शेषः। कार्यसंसिद्धौ त्वरयौत्सुक्ये द्वौ गुणौ यस्य तद् द्विगुण द्विरावृत्त रंहो वेगो यस्य तेन तथोक्तेन। "गुणस्तु वृत्ति शब्दादिज्येन्द्रियामुख्यतन्तुषु" इति वैजयन्ती। मनसाऽगमत्, सस्मारेत्यर्थः। गमेर्लुङ् लृदित्वाच्च्लेरङादेशः।

अन्वय—पाकशासनः तत्र निश्चित्य कार्यसंसिद्धौ त्वराद्विगुणरंहसा मनसा कन्दर्पम् अगमत्।

शब्दार्थ—पाकशासनः=इन्द्र। तत्र=वहाँ अर्थात् शिव के आकर्षण का। निश्चित्य=विनिश्चय करके। कार्यसंसिद्धौ=कार्य की सफलता के लिए, कार्य-सिद्ध हेतु। त्वराद्विगुणरंहसा=औत्सुक्य से दुगुने (रंहसा=) वेग वाले। कन्दर्पम्=कामदेव को। मनसा अगमत्=स्मरण किया।

संस्कृत टीका—पाकशासनः=इन्द्रः, तत्र=तस्मिन् कर्मणि (हरस्य पार्वतीं प्रति आकर्षणे), निश्चित्य=अवधार्य, पार्वतीं प्रति महादेवस्याकर्षणे मन्मथ एव क्षमः, इति देवैः सह परामृश्य, कार्यसंसिद्धौ=प्रयोजनसाफल्ये, त्वराद्विगुणरंहसा=औत्सुक्येन द्विगुणवेगवता, मनसा=चेतसा, कन्दर्पम्=कामदेवम्, अगमत्=प्रापुः। स्मृतवान् इत्यर्थः। मनसा मन्मथं तीव्रं सस्मारेति भावः।

समास—पाकं शासयतीति सः पाकशासनः (उपपद तत्पु०) कार्यस्य संसिद्धिः, तस्याम् कार्यसंसिद्धौ (ष० तत्पु०)। त्वरया द्विगुण रंहः यस्य तत्, तेन त्वराद्विगुणरंहसा (बहु०)।

व्याकरण—पाकशासनः—पाक+शास्+णि+ल्यु (=अन), प्र० एक०। निश्चित्य—निस्+चि+क्त्वा (=ल्यप्)। अगमत्—गम्+लुङ् प्र० पु० एक०।

हिन्दी अनुवाद—(तब देवराज) इन्द्र ने वहाँ (अर्थात् शंकर के मन को पार्वती के प्रति आकर्षित करने का) निश्चय (देवताओं से परामर्श) करके कार्य सिद्धि हेतु औत्सुक्य से दुगुने वेग वाले मन से कामदेव का स्मरण किया।

विशेष—पुराणों में कहा गया है कि इन्द्र ने पाक नामक असुर का वध किया था, इसलिए उसे पाकशासन कहा जाता है—"पाकं जघान तीक्ष्णा-

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ग्रैर्मार्गणैः कङ्कवाससैः। तत्र नाम विभुर्लेभे शासनत्वाच्छरैर्दृढैः॥ पाकशासनतां शक्रः सर्वामरपतिर्विभुः।" (वामन पुराण)। ऐसा ही उल्लेख भागवत पुराण में भी मिलता है॥ ६३॥

अथ स ललितयोषिद्भ्रूलताचारुशृङ्गं
रतिवलयपदाङ्के चापमासज्य कण्ठे।
सहचरमधुहस्तन्यस्तचूताङ्कुरास्त्रः
शतमखमुपतस्थे प्राञ्जलिः पुष्पधन्वा॥६४॥

सञ्जीविनी--अथेति। अथ स्मरणानन्तरम्, स स्मृत इत्यर्थः। पुष्पं धनुर्यस्य स पुष्पधन्वा कामः। "वा संज्ञायाम्" इत्यानङ् "ललितं त्रिषु सुन्दरम्" इत्यमरः। ललितायाः सुन्दर्या योषितो भ्रुवौ लते इव चारुणी शृङ्गे कोटी यस्य तत्तथोक्तं चापम्। "रतिः स्मरप्रिया" इत्यमरः। तस्या वलयपदानि कङ्कणस्थानान्यङ्कश्चिह्नं यस्य स तथोक्ते कण्ठ आसज्य लगयित्वा चापकण्ठविशेषणाभ्यां शृङ्गारैकनिधेस्त्रिभुवनैकवीरस्य शृङ्गारवीरोपकरणेषु तुल्यरसत्वं व्यज्यते। सहचरस्य सख्युर्मधोर्वसन्तस्य हस्ते न्यस्तं चूताङ्कुरमेवास्त्रं यस्य स तथोक्तः प्राञ्जलिः कृताञ्जलिः सन्। शतमखमिन्द्रमुपतस्थे सङ्गतवान्। सङ्गतिकरणार्थादात्मनेपदम्। अत्र स्वभावोक्तिः। स्वभावोक्तिरसौ चारु यथावद्वस्तुवर्णनम्।" इति।

अन्वय--अथ सः पुष्पधन्वा ललितयोषिद्भ्रूलताचारुशृङ्गं चापं रतिवलयपदाङ्के कण्ठे आसज्य सहचरमधुहस्तन्यस्तचूताङ्कुरास्त्रः प्राञ्जलिः शतमखम् उपतस्थे।

शब्दार्थ--अथ - तदनन्तर। सः - वह। पुष्पधन्वा = कामदेव। ललितयोषित् = सुन्दर स्त्री। भ्रूलता = भौंह। चारु = आकर्षक। शृङ्गम् = कोटि। चापम् = धनुष को। रतिवलय = रति का कंकण। पद = स्थान। अङ्के = चिह्नित। कण्ठे = कण्ठ में। आसज्य = धारण करके सहचर = मित्र। मधु = वसंत। न्यस्तम् = रखा हुआ। चूताङ्कुरास्त्राः = आम्रमंञ्जरी के पुष्परूपी अस्त्र। प्राञ्जलिः = अंजलि बद्ध होकर। शतमखमुपतस्थे = इन्द्र के सामने खड़ा हो गया।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संस्कृत टीका—अथ = इन्द्रस्मरणानन्तरम्, सः = तथोक्तः, स्मृतः, पुष्पधन्वा = कामदेवः, ललितयोषिद् = भ्रूलताचारुशृङ्गम् = सुन्दररमणीभ्रूवल्लीरुचिरकोटिम्, चापम् = धनुः, रतिवलयपदाङ्के = मन्मथप्रियाकङ्कणस्थानचिह्ने, कण्ठे = ग्रीवायाम्, आसज्य = समारोप्य, सहचरमधुहस्तन्यस्तचूताङ्कुरास्त्रः = सखावसन्तकरार्पिताम्रमञ्जरीरूपायुधः, प्राञ्जलिः = बद्धाञ्जलिः (सन्), शतमखम् = इन्द्रम्, उपतस्थे = समुपस्थितोऽभूत् ।

समास—पुष्पं धनुर्यस्य सः पुष्पधन्वा (बहु०)। ललिता चासौ योषित् ललितयोषित् (कर्म०) ललितयोषितः भ्रूलते (ष० तत्पु०), भ्रुवौ एव भ्रूलते (कर्म०), ललितयोषिद्भ्रूलते इव चारुणी (कर्म०) ललितयोषिद्भ्रूलते इव चारुणी शृङ्गे यस्य तत् (बहु०)। रतेः वलयः रतिवलयः (ष० तत्पु०), तस्य अङ्कः (ष० तत्पु०) तस्मिन् रतिवलयपदाङ्के । सह चरतीति सहचरः (उपपद तत्पु०), सहचरश्चासौ मधुः सहचरमधुः (कर्म०) सहचरमधोः हस्तः सहचरमधुहस्तः (ष० तत्पु०) सहचरमधुहस्ते न्यस्तं सहचरमधुहस्तन्यस्तम् (स० तत्पु०), चूतस्य अङ्कुरः चूताङ्कुरः (ष० तत्पु०) चूताङ्कुर एव अस्त्रम् चूताङ्कुरास्त्रं (कर्म०) सहचरमधुहस्तन्यस्तचूताङ्कुरास्त्रं यस्य सः सहचरमधुहस्तन्यस्तचूताङ्कुरास्त्रः (बहु०)। प्रकृष्टः अञ्जलिः यस्य सः (बहु०) प्राञ्जलिः । शतं मखाः यस्य सः तम् शतमखम् (बहु०)।

व्याकरण—पुष्पधन्वा—पुष्पधनुष् प्र० एक० । आसज्य—आ + सञ्ज् + क्त्वा (= ल्यप्), उपतस्थे—उप + स्था, आत्मनेपद, लिट्, प्र० पु० एक० । सङ्गतिकरण अर्थ में आत्मनेपद हुआ है—"उपाद्देवपूजासङ्गतिकरणमित्रकरणपथिष्विति वाच्यम्" (वार्तिक)।

अलङ्कार—स्वभावोक्ति ।

छन्द—प्रस्तुत श्लोक में मालिनी छन्द है, इसका लक्षण है—'ननमययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः' अर्थात् जिसके प्रथम चरण में दो नगण, एक मगण और दो यगण हों उसे मालिनी छन्द कहते हैं। काव्यशास्त्रीय नियमों के अनुसार महाकाव्यों के सर्गों का अन्तिम श्लोक भिन्न छन्द में होना चाहिए ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अतः महाकवि ने इस नियम का पालन किया है। उल्लेखनीय है कि पूर्ववर्ती सभी श्लोक अनुष्टुप् छन्द में निबद्ध हैं।

हिन्दी अनुवाद—तदनन्तर (इन्द्र के द्वारा अत्यन्त तीव्रता से स्मरण किये जाने के पश्चात्) वह कामदेव रमणियों के भौंहों के समान मनोहर कोटि वाले धनुष को (अपनी) प्रिया के कंकण से चिह्नित (अपने) गले में धारण करके, मित्र वसंत के हाथ में आम्रमञ्जरी रूपी अपना बाण प्रदान करके अञ्जलिबद्ध होकर इन्द्र के सामने उपस्थित हुआ।

विशेष—ज्ञातव्य है कि पुष्प का धनुष लेने के कारण कामदेव को पुष्प-धन्वा कहा गया है। वसन्त कामदेव का सखा है और आम्रांकुर उसका अस्त्र विशेष है।। ६४।।

इस प्रकार संस्कृत-हिन्दी व्याख्या सहित कुमार-
सम्भव का द्वितीय सर्ग समाप्त।

□□

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कुमारसम्भव–द्वितीयसर्गस्थ-

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोक	श्लो० सं०	पृ० सं०
अथ सर्वस्य धातारं	३	४
अथ स ललितयोषिद्	६४	७४
अमी च कथमादित्याः	२४	२९
आत्मानमात्मना वेत्सि	१०	१४
आवर्जितजटामौल-	२६	३१
इतः स दैत्यः प्राप्तश्रीर्नेत	५५	६३
इत्थमाराध्यमानोऽपि	४०	४६
इति तेभ्यः स्तुतीः श्रुत्वा	१६	२०
इति व्याहृत्य विबुधान्	६२	७१
उद्घातः प्रणवो यासां	१२	१६
उत्पाट्य मेरुशृङ्गाणि	४३	४९
उच्चैरुच्चैःश्रवास्तेन	४७	५४
उभ एनक्षमे वोढुम्	६०	६९
उमारूपेण ते यूयं	५९	६८
एवं यदात्थ भगवन्नामृष्टं	३१	३७
किं चायमरिदुर्वारः	२१	२६
किमिदं द्युतिमात्मीयां	१९	२४
कुबेरस्य मनःशल्यं	२२	२७
गोप्तारं सुरसैन्यानां	५२	६०
जगद्योनिरयोनिस्त्वं	९	१२
जयाशा यत्र चास्माकं	४९	५६
ज्वलन्मणिशिखाश्चैनं	३८	४४
ततो मन्दानिलोद्धूत-	२९	३५

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्लोक	श्लो० सं०	पृ० सं०
तत्कृतानुग्रहापेक्षी	३९	४५
तत्र निश्चित्य कन्दर्पम्	६३	७२
तदिच्छामो विभो	५१	९
तदीयास्तोयदेष्वद्य	५०	५७
तद्ब्रूत वत्साः किमितः	२८	३४
तस्मिन्विप्रकृताः काले	१	१
तस्मिन्नुपायाः सर्वे	४८	५५
तस्यात्मा शितिकण्ठस्य	६१	७०
तस्योपायनयोग्यानि	३७	४३
तिसृभिस्त्वमवस्थाभिः	६	८
तेनामरवधूहस्तैः	४१	४७
तेषामाविरभूद् ब्रह्मा	२	३
त्वं पितॄणामपि पिता	१४	१८
त्वमेव हव्यं होता च	१५	१९
त्वामामनन्ति प्रकृतिं	१३	१७
द्रवः संघातकठिनः	११	१५
नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं	४	६
पर्यायकुलत्वान्मरुतां	२५	३०
पर्यायसेवामुत्सृज्य	३६	४२
पुराणस्य कवेस्तस्य	१७	२१
पुरे तावन्तमेवास्य	३३	३९
प्रशमादर्चिषामेतद्	२०	२५
भवल्लब्धवरोदीर्ण-	३२	३८
भुवनालोकनप्रीतिः	४५	५२
मन्दाकिन्या पयः शेषं	४४	५०
यज्वभिः सम्भृतं हव्यं	४६	५३
यदमोघमपामन्तरुप्तं	५	७
[illegible]	[illegible]	२८

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्लोक	श्लो० सं०	पृ० सं०
लब्धप्रतिष्ठाः प्रथमं	२७	३२
वचस्यवसिते तस्मिन्	५३	६१
वीज्यते स हि संसुप्तः	४२	४८
वृतं तेनेदमेव प्राङ्	५६	६५
व्यावृत्तगतिरुद्याने	३५	४१
स द्विनेत्रं हरेश्चक्षुः	३०	३६
सम्पत्स्यते वः कामोऽयं	५४	६२
संयुगे सांयुगीनं तम्	५७	६६
सर्वाभिः सर्वदा चन्द्रस्तं	३४	४०
स हि देवः परं ज्योतिः	५८	६७
स्त्रीपुंसावात्मभागौ	७	९
स्वकालपरिमाणेन	८	११
स्वागतं स्वानधीकारान्	१८	२३

इति श्लोकानुक्रमणिका समाप्त

● ●

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

...विजयतेतराम् ❀

रसिकसम्राट् श्रीअग्रदेवस्वामी विरचित

श्रीसीतारामध्यानमञ्जरी

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अनुवादक

...त श्री शिवदत्त मिश्र

...स्त्री द्वारा सम्पादित

हमारे कुछ महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

कुमारसम्भव महाकाव्य—सञ्जीविनी, अन्वय-शब्दार्थ-समास-
व्याकरण-अलङ्कार-हिन्दी अनुवाद
सहित (प्रथम सर्ग) डा० उषा शर्मा ३.००

काव्य-व्यापार और विशुद्ध काव्य का क्षेत्र :
वस्तुध्वनि— डा० सत्यव्रत शर्मा ८.००

लघुसिद्धान्त कौमुदी—'जयन्ती' हिन्दी टीका, प्रश्न-पत्र समन्वित १०.००

लघुसिद्धान्तकौमुदी-रहस्य—लघुकौमुदी के सभी प्रयोगों की सिद्धि ७.५०

कनकधारा स्तोत्र—लक्ष्मी-उपासनोपयोगी, हिन्दी टीका सहित १.००

सिद्ध सरस्वती स्तोत्र—सरस्वती-उपासनोपयोगी विविध विषय सहित १.००

पञ्चांग पूजा पद्धति—हिन्दी टीका सहित ५.००

...श्वदान प्रयोग—हिन्दी टीका सहित ५.००

...त्र-चि...मणि—'शिवदत्ती' हिन्दी व्याख्या सहित १०.००

...सप्तशती—नागेशी, शान्तनवी, जयन्ती संस्कृत-
हिन्दी टीका सहित शीघ्र प्राप्य

...सप्तशती मूल मात्र—पाठ-विधि तथा पाठोपयोगी विविध
विषय विभूषित शीघ्र प्राप्य

...देव-प्रतिष्ठा प्रयोग—'शिवदत्ती' हिन्दी टीका सहित शीघ्र प्राप्य

प्रकाशक—

शिव साहित्य संस्थान

सी० के० ५/२६ ए., भिखारीदास लेन, वाराणसी—२२१००१

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha